2078

अनेकान्त

सम्पादक–जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

विषय-सूची

१ श्रीवीतराग-स्तवनम् [अमरकवि कृतम् ... ७५

२ उत्तर कन्नडका मेरा प्रवास—[पं० के० भुजबली शास्त्री ... ७६

३ आत्मा, चेतना या जीवन—[बा० अनन्तप्रसादजी B.Sc. Eng. ८०

४ प्राचीन जैन साहित्य और कलाका प्राथमिक परिचय —[एन. सी. वाकलीवाल ... ८५

५ हमारी तीर्थयात्राके संस्मरण—[पं० परमानन्द शास्त्री ... ८६

६ भारत देश योगियोंका देश है—[बा० जयभगवानजी जैन एडवोकेट पानीपत ... ९३

७ भारतके अजायबघरों और कला-भवनोंकी सूची— [बा० पन्नालालजी अग्रवाल ... ९८

८ वंगीय जैन पुरावृत्त—[बा० छोटेलालजी जैन कलकत्ता ... ९९

अनेकान्तके ग्राहक बनना और बनाना
प्रत्येक साधर्मी भाईका कर्तव्य है

अनेकान्त
वर्ष १२
किरण ३

अगस्त
सन् १९५३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमहावीरजीमें मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजीका सातवीं प्रतिमा ग्रहण और ५१२५) रु० का दान तथा वीरशासन जयन्ती

समाज को यह जानकर अत्यन्त खुशी होगी कि समाजके वयोवृद्ध साहित्य तपस्वी आचार्य जुगुलकिशोर मुख्तार भगवान महावीरकी उस विशिष्ट मूर्ति के सन्मुख स्वामी समन्तभद्रके रत्नकरण्डश्रावकचारमें प्रदर्शित सप्तम प्रतिमाके व्रतोंको धारण कर नैष्ठिक श्रावक हुए हैं। यद्यपि वे पहले से ही ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते थे परन्तु वह उस समय प्रतिमा रूपमें नहीं था। व्रत ग्रहण करनेके पश्चात् मुख्तार साहबने परिग्रह परिमाणव्रतकी अपनी सीमाको और भी सीमित करनेके लिए वीरसेवामन्दिर ट्रस्टको दिये गये दानके अतिरिक्त अपने निजी खर्चके लिए रक्खे हुए धनमें से भी पाँच हजार एक सौ पच्चीस रुपयों के दानकी घोषणा की। जिसमें से पाँच हजार एक रुपया कन्याओंको छात्रवृत्तिके लिए, १०१) वीरसेवा मन्दिर बिल्डिंग फंडमें, ११) तीर्थक्षेत्र कमेटी, २) औषधालय महावीरजीको और पांच पांच रुपया दोनों महिला आश्रमोंको प्रदान किये। इस तरह यह उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ।

मुख्तार साहबका कार्य आत्मकल्याणकी दृष्टिसे समयोपयोगी और दूसरोंके द्वारा अनुकरणीय है।

वीर शासन जयन्ती

इस वर्षकी वीरशासन जयन्तीका उत्सव श्री महावीरजी (चांदनगांव) में सानन्द मनाया गया। तीर्थक्षेत्र कमेटीकी ओरसे लाउडस्पीकर वगैरहका सब सब प्रबन्ध था और कमेटीके मंत्री सेठ बधीचन्दजी गंगवाल और सोहनलालजी उत्सवमें उपस्थित थे। उत्सवमें विभिन्न स्थानोंसे अनेक व्यक्ति पधारे थे जिनमें कुछ स्थानोंके नाम नीचे दिये जाते हैं :— जयपुर, रेवाड़ी जिला गुड़गांव, ब्यावर, देहली, सरसावा, सहारनपुर, नानौता, एटा, फिरोजाबाद, आगरा, ललितपुर (झांसी) गुना, खेमारी जि० उदयपुर और मेनपुरी जि० एटा आदि स्थानोंके सज्जन सकुटुम्ब पधारे थे। इसके अतिरिक्त स्थानीय मुमुक्षु जैन महिलाश्रमकी सचालिका श्रीमती बु० कृष्णाबाई जी सपरिवार और कमलाबाई आश्रमकी छात्राएँ और पाठिकाएँ उसमें शरीक थीं। मुमुक्षु महिलाश्रमकी छात्राओंने ता० २७की रात्रिको वीर शासन जयन्तीका का उत्सव मनाया था और मुख्तार सा० का अभिनंदन भी किया था उत्सव ता० २६ और २७ को मुख्तार सा० और सेठ छदामीलालजीकी अध्यक्षतामें दोनों दिन मनाया गया था, ता० २७ को प्रातःकाल प्रभातफेरी और झंडाभिवादनके बाद भगवान महावीरकी पूजनकी गई थी। दोपहरको दोनों ही दिन सभाएँ हुईं जिनमें विद्वानोंके अनेक सारगर्भित भाषण हुए जिनमें भगवान महावीरके शासन और उसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए उस पर स्वयं आचरण करनेकी ओर संकेत किया गया। रात्रिमें ला० राजकृष्णजी जैनने शास्त्र सभाकी, और उसमें व्रत नियम ग्रहण करने तथा दीक्षा लेनेकी आवश्यकता, उसका स्वरूप तथा महत्ताका विवेचन किया।

परमानन्द जैन

अनेकान्तका 'पर्यूषणांक'

अनेकान्तके प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस वर्ष अनेकान्तका 'पर्यूषणांक' निकालनेकी योजना हुई है। इस अङ्कमें दशलक्षणधर्म पर अनेक विद्वानोंके महत्वपूर्ण लेख रहेंगे। अतः लेखक विद्वानों और कवियोंसे सादर अनुरोध है कि वे अपनी अपनी महत्वपूर्ण रचनायें शीघ्र भेज कर अनुगृहीत करें। क्योंकि इस अङ्कको १२ सितम्बर तक प्रकाशित करनेका विचार है। साथ ही विज्ञापन दाता यदि अपने विज्ञापन शीघ्र ही भेज सकें तो उन्हें भी स्थान दिया जा सकेगा विज्ञापनके रेट पत्र व्यवहारसे तय करें।

निवेदक—परमानन्द जैन

प्रकाशक 'अनेकान्त'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

वार्षिक मूल्य ५)

एक किरण का मूल्य ।!)

सम्पादक—जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

वर्ष १२
किरण ३

वीरसेवामन्दिर, १ दरियागंज, देहली
श्रावण वीरनि० संवत् २४७६, वि० संवत् २०१०

जुलाई
१९५३

श्रीवीतराग-स्तवनम्

(अमरकवि-कृतम्)

जिनपते द्रुतमिन्द्रिय-विप्लवं दमवतामवतामवतारणम् ।
वितनुषे भव-वारिधितोऽन्वहं सकलया कलया कलयाह्वया ॥ १ ॥
तव सनातन-सिद्धि-समागमं विनययतो नयतो नयतो जनं ।
जिनपते सविवेक मुदित्वराऽधिकमला कमलाकमलासया ॥ २ ॥
भव-विवृद्धिकृते कमलागमो जिनमतो नमतो न मतो मम ।
न रतिदामरभूरुहकाम्नना सुरमणी रमणीरमणीयता ॥ ३ ॥
किल यशः शशानि प्रसृते शशी नरकतारक तारकतामितः ।
व्रजति शोषमतोऽपि महामतो विभवतो भवतो भव-तोयधिः ॥ ४ ॥
न मनसो मन येन जिनेश ते रसमयः समयः समयत्यसौ ।
जगदभेदि विभाव्य ततः क्षणादपरता परता परतापकृत ॥ ५ ॥
त्वयि बभूव जिनेश्वर शाश्वती शमवता ममता मम तादृशी ।
यतिपते तदपि क्रियते न किं शुभवता भवता भवतारणम् ॥ ६ ॥
भवति यो जिननाथ मनःशमां वितनुते तनुतेऽतनुतेजसि ।
कमिव नो भविनस्तमसां सुखप्रसविना सविता स विदारयेत् ॥ ७ ॥
परमया रमयाऽरमया-क्षयांऽह्किमलं कमलं कमलं भयं ।
न नतमानतमो न तमां नमनवरविभा रविभा रविभासुर ॥ ८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमरसामरसाऽमर-निर्म्मिता जिननुतिर्ननु तिग्मरुचेर्यथा ।
रुचिरसौ चिरसौख्यपदप्रदा निहत-मोह-तमो रियुवीरते ॥ ६ ॥
इति वेणीकृपाण-अमरकवि-कृतं श्रीवीतरागस्तवनम् ।

नोट—गत वीर-शासन-जयन्तीके अवसर पर श्रीमहावीरजी अतिशय क्षेत्र (चांदनपुर) के शास्त्रभण्डारका अवलोकन करते हुए कई नये स्तुति-स्तवन वीरसेवामंदिरको प्राप्त हुए हैं जिनमें यह भी एक है, जो अच्छा सुन्दर भावपूर्ण एवं अलंकारमय स्तोत्र है। इसके कर्त्ता अमर कवि, जिनके लिये पुष्पिकामें 'वेणीकृपाण' विशेषण लगाया गया है, कब हुए हैं और उनकी दूसरी रचनाएँ कौन कौन हैं यह अभी अज्ञात है। ग्रन्थ प्रति सं० १८२७ की लिखी हुई है। अतः यह स्तवन इससे पूर्वकी रचना है इतना तो स्पष्ट ही है, परन्तु कितने पूर्वकी है यह अन्वेषणीय है।
—सम्पादक

उत्तर कन्नडका मेरा प्रवास

(लेखक—विद्याभूषण पं० के० भुजबली शास्त्री, मूडबिद्री)

उत्तर कन्नडकी चौहद्दी इस प्रकार है उत्तरमें बेलगाम; पूर्वमें धारवाड एवं मैसूर; दक्षिणमें मद्रास प्रांतीय दक्षिण कन्नड, पश्चिममें अरब समुद्र और उत्तर पश्चिममें गोवा। यह प्रान्त दीर्घकालसे विश्रुत है। ई० पू० तीसरी शताब्दीमें मौर्य-सम्राट् अशोकने इस प्रान्तान्तर्गत वनवासिमें अपना दूत भेजा था। यहांके प्राप्त अन्यान्य शिलालेखोंसे प्रकट है कि यहाँपर क्रमशः कदंबोंने, रट्टोंने, पश्चिम चालुक्योंने और यादवोंने राज्य किया है। साथ ही साथ पुष्ट प्रमाणोंसे यह भी सिद्ध है कि यह प्रदेश सुदीर्घ काल तक जैनधर्मका केन्द्र रहा है। एम० गणपतिरावके मतसे कदंबोंने ई० पू० २०० से ई० सन् ६०० तक राज्य किया था❀। हां, बादमें भी इस वंशके राजाओंने शासन किया है अवश्य। पर, चालुक्य, राष्ट्रकूट और विजयनगर के शासकोंकी आधीनतामें। दक्षिणके प्राचीन चोल, चेर पाण्ड्य और पल्लव राजाओंकी तरह कदंब राजाओंने भी खास कर मृगेशवर्मासे हरिवर्मा तकके शासकोंने जैनधर्मको विशिष्ट आश्रय प्रदान किया था ×।

मृगेशवर्मा स्वयं जैनधर्मानुयायी था। उसने अपने राज्यके तीसरे वर्षमें जिनेन्द्रके अभिषेक, उपलेपन, पूजन, भग्न संस्कार (मरम्मत) और महिमा (प्रभावना) कार्योंके लिए भूमिदान किया था। उस भूमिमें एक विवर्तन भूमि खास कर पुष्पोंके लिए निर्दिष्ट थी। × मृगेशवर्माका ग्रामदान सम्बन्धी एक दूसरा दानपत्र भी मिलता है। इसीके समान इसका पुत्र रविवर्मा भी पिता मृगेशवर्माकी तरह जैनधर्मका भक्त रहा इसका एक महत्त्वपूर्ण दानपत्र पलासिका (बेलगाम) में प्राप्त हुआ है†। जो कि जैनधर्ममें इसके दृढ़ सिद्धान्तको प्रकट करता है। रविवर्माका उत्तराधिकारी हरिवर्मा भी अपने प्रारम्भिक जीवनमें जैनधर्मका श्रद्धालु था। हां, वह अपने अन्तिम जीवनमें शैव हो गया था। इसने भी जैनमन्दिर आदिके लिये दान दिया है। सारांशतः कदंबवंशी राजाओंके शासनकालमें जैनधर्म विशेष अभ्युदयको प्राप्त हुआ था। श्री बी० एस० रावके शब्दोंमें कदंबोंके राजकवि जैन थे। उनके सचिव और अमात्य जैन थे, उनके दानपत्रोंके लेखक जैन थे और उनके व्यक्तिगत नाम भी जैन थे। साथ-ही-साथ कदंबोंके साहित्यकी रूप-रेखा भी जैन काव्य-शैलीकी थी❀। इस प्रांतके बादके राष्ट्रकूट और चालुक्य आदि शासकोंका सम्बन्ध भी जैनधर्मसे कितना घनिष्ट रहा, इस बातको इतिहासके अभ्यासी स्वयं भली प्रकार जानते हैं। इसलिए उस बातको फिर दुहराकर इस लेखके कलेवरको बढ़ाना मुझे इष्ट नहीं है।

वहांके उल्लेखनीय स्थानोंमें (१ वनवासि (२) सौदे (३) गेरुसोप्पे (४) हाडुहल्लि ५. भट्कल और (६)

❀ दक्षिण कन्नड निल्लेय प्राचीन इतिहास पृष्ठ १६
× 'जर्नल आव दी मीथिक सोसाइटी' भा० २२, पृ० ६१
❀ 'जैनीज्म इन साउथ इंडिया'
† 'जैन हितैषी' भा० १४, पृ० २२६. † 'जैन हितैषी भा० १४, पृ० २२७.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बिलिगि प्रमुख हैं। पाठकोंके समक्ष इन प्राचीन स्थानोंका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार दिया जाता है—(१) वनवासि—सिरसीसे वनवासि १५ मील पर है। जैनोंके परम पुनीत ग्रन्थ षट्खण्डागमके प्रारम्भिक सूत्र, आचार्य पुष्पदन्तके द्वारा इसी पवित्र भूमिमें रचे गये थे। इस दृष्टिसे यह क्षेत्र जैनोंके लिये एक पवित्र तीर्थ सा है। इस प्रसंगमें यह भी बतला देना आवश्यक है कि दिगम्बर सम्प्रदायके उपलब्ध साहित्यमें षट्खण्डागम ही आदिम-ग्रन्थ है। इससे पूर्व जैनोंके सभी पवित्र आगम ग्रंथ (अंग और पूर्व) पूज्य आचार्योंके द्वारा कण्ठस्थ ही सुरक्षित रखे गये थे। जैन आगमको सर्वप्रथम लिपिबद्ध करनेका परम श्रेय प्रातः स्मरणीय आचार्य पुष्पदन्तको ही प्राप्त है। साथ ही साथ, लिपिबद्ध करनेका पुनीत स्थान वही वनवासि है। कन्नड भाषाका आदि कवि महाकवि पंप भी इस स्थान पर विशेष मुग्ध था। इसने अपने भारत या 'विक्रमार्जुन विजय' में इस प्रदेशकी बड़ी तारीफ़ की है। महाकवि कहता है कि 'प्रकृति प्रदत्त असीम सौंदर्यसे शोभायमान त्याग भोग एवं विद्याका केन्द्र इस वनवासिमें जन्म लेने वाला वस्तुतः महा भाग्यशाली है।'

बड़े खेदकी बात है कि वनवासि इस समय एक सामान्य गांव है। उत्तर दिशाको छोड़ कर यह तीनों दिशाओंमें वरदा नदीसे घिरा हुआ है। साथ ही साथ भग्नावशिष्ट एक मृण्मय किलेसे - गाँव तेरुबीदि, कंचुगारबीदि और होलेमठबीदि आदि कतिपय मार्गोंमें विभक्त है। इस समय स्थित जैनोंका मन्दिर कंचुगार रास्ते में है। मन्दिर अधिक प्राचीन नहीं है। साथ ही साथ लकड़ीकी बनी हुई एक सामान्य इमारत है। मन्दिरमें विराजमान मूर्तियाँ भी साधारण हैं। हाँ, तेरुबीदिमें विशाल शिलामय मधुकेश्वर देवालयके नामसे वैष्णवोंका जो मन्दिर विद्यमान है, वह अवश्य दर्शनीय है। यह मूलमें जैन मन्दिर रहा होगा। इस समय इसके लिए सिर्फ दो प्रमाण दिये जाते हैं। एक तो मन्दिरके सामने दीप-स्तम्भके अतिरिक्त एक और स्तम्भ है जो कि जैन देवालयोंके सामने मानस्तम्भके नामसे अधिकांश पाये जाते हैं। दूसरा प्रमाण मन्दिरके मुख्य द्वार पर गजलक्ष्मी अंकित है। यह भी जैन देवालयोंमें प्रचुर परिमाणमें पाई जाती है। यह बात ठीक ही है कि इस समय तो यहाँ पर सर्वत्र हिन्दू चिन्ह ही नजर आते हैं। पर इसमें सन्देह नहीं है कि ये सब चिन्ह बादके हैं। खेद इस बातका है कि यह स्थान जैनोंका एक प्राचीन पवित्र क्षेत्र होने पर भी इस समय यहाँ पर इनके कोई भी उल्लेखनीय चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होते। आजकल यहाँ पर जैनोंके घर भी दो-चार ही रह गये हैं। इनकी स्थिति भी संतोषप्रद नहीं है। सुना है कि वनवासिमें किलेके अन्दर और बाहर मिला कर इस समय लगभग ६०० घर हैं और जनसंख्या लगभग ६००० की है। यहाँके जैनमन्दिरमें दूसरीसे सत्रहवीं शताब्दी तकके १२ शिलालेख प्राप्त हुए हैं*। ई० पू० तीसरी शताब्दीके बौद्ध ग्रन्थों में भी बनवासिका उल्लेख मिलता है। टोलेमीने भी इसका वर्णन किया है। वस्तुतः प्राचीन कालमें यह बड़े ही महत्वका स्थान रहा है इसका प्राचीन नाम सुधापुर है। सोदे भी सिरसी से ही जाना पड़ता है। सिरसीसे सोदे १२ मील पर है। यह एल्लापुर जाने वाली मोटरसे जाना होता है। हाँ, मोटरसे उतर कर २½ मील पैदल चलना होगा। सोदे भी जैनोंका एक प्राचीन स्थान है। यहाँ पर जैन मठ है। यह मूलमें अकलंकके द्वारा स्थापित कहा जाता है। यहाँ पर भी अठारह समाधियोंको छोड़ कर कोई उल्लेखनीय जैन स्मारक दृष्टिगत नहीं होता। समाधियोंमें भी दो-चारोंको छोड़ कर शेष नाममात्र के हैं। इन समाधियोंमें एक का लेख पढ़ा जाता है। लेख सोलहवीं शताब्दीका है। मठके पास ही लकड़ीका बना हुआ एक जैन-मन्दिर है। इसकी खड्गासन मूर्ति दर्शनीय है। सामने मुत्तिनकेरेके नामसे भग्नावशिष्ट एक तालाब है। उक्त मन्दिर और यह तालाब एक रानीके द्वारा बनवाये गये कहे जाते हैं। वह भी अपने नासिका भूषण (नथिया) को बेचकर। इसकी कथा बड़ी रोचक है। कथाका सारांश इस प्रकार है—सोदेका जैन राजा अनजानमें गुब्बि (पक्षिविशेष) का मांस खा गया। मांस बाजीकरण सम्बन्धी औषधिमें वैद्यके द्वारा खिलाया गया था। यह बात राजाको बादमें मालूम हुई। राजाने तत्कालीन सोदेके भट्टारकजीसे इसका प्रायश्चित माँगा। अदूरदर्शी भट्टारकजीने प्रायश्चित नहीं दिया। फलस्वरूप राजा रुष्ट होकर लिंगायत अर्थात् शैव हो गया। मतान्तरित होने पर राजाने जैनोंपर बड़ा अत्याचार किया। बल्कि बहुतसे जैनोंको शैव बनाया। बहुतसे

* 'बम्बई प्रान्तके प्राचीन जैन स्मारक' ८४ १३१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन राज्य छोड़कर अन्यत्र भाग गये। भट्टारकजीको राजधानीसे अलग कर दिया। यही कारण है कि उन्हें दूसरे स्थान पर मठ बनवाना पड़ा! वही वर्तमान मठ कहा जाता है। थोड़े समयके बाद एक दिन राजा सख्त बीमार हो गया। बचनेकी आशा कम दिखाई दी। उसकी रानीने जो कट्टर जैन धर्मानुयायी रही, यह प्रतिज्ञा की कि इस कष्ट-साध्य बीमारीसे अगर राजा बच गया तो मैं अपने सौभाग्य-चिन्ह नासिका-भूषणको बेचकर एक जैन मन्दिर बनवा दूँगी। राजा स्वस्थ हो गया। सुना है कि बादमें रानीने प्रतिज्ञानुसार इस मन्दिरका निर्माण कराया था। साथ-ही-साथ सामनेका तालाब भी। इसलिये इस सरोवरका नाम मुत्तिनकेरे प्रसिद्ध हुआ। क्योंकि नासिका-भूषण मोतियोंका बना हुआ था।

पूर्वोक्त मन्दिरके बगलमें एक विशाल शिलामय दूसरा मन्दिर है। इस समय यह वैष्णवोंके वशमें है। यह मूलमें जैन मन्दिर ही रहा होगा। इसके सामने मानस्तम्भ मौजूद है। मन्दिरके ऊपर सामने कीर्तिमुख भी। मठके आस-पास इमारतके बहुतसे पत्थर पड़े हुए हैं। ये सब प्राचीन स्मारकोंके ही मालूम होते हैं। वर्तमान भट्टारक जी भद्रपरिणामी अध्ययनशील, व्यवहारकुशल त्यागी हैं। यहाँ पर ताड़पत्रके ग्रन्थोंका संग्रह भी है। पर इसमें कोई अप्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रन्थ नहीं मिला। अन्यान्य स्थानोंके शिलालेखोंकी तरह सोदेके शिलालेख भी बम्बई सरकारकी ओरसे प्रकाशित हो चुके हैं।

(३ गेरुसोप्पे—इसका प्राचीन नाम भल्लातकीपुर है। होनावरसे पूर्व अठारह मील पर शरावतीके किनारे यह गाँव है। प्रसिद्ध जोग जलपातसे भी इतनी ही दूर है। ई० सन् १४०६ से १६१० तक यह गेरुसोप्पेके जैन राजाओंकी राजधानी थी। स्थानीय लोगोंका विश्वास है कि अपने महत्वके दिनोंमें यहाँ पर एक लाख घर और चौरासी मन्दिर विद्यमान थे। जन श्रुति है कि विजयनगरके राजाओं (ई० सन् १३३६-१५५५) ने ही गेरुसोप्पेके जैन राजवंशको उन्नत बनाया था। १५वीं शताब्दी के प्रारम्भसे यहाँका राजत्व प्रायः स्त्रियोंके हाथमें ही रहा क्योंकि १६वीं और १७वीं शताब्दीके प्रथम भागके प्रायः सभी लेखक गेरुसोप्पे या भटकलकी महारानीका नाम लेते हैं। १७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें गेरुसोप्पेकी अन्तिम महारानी भैरादेवी पर विदनूरके वेंकटय नायकने हमला किया था। इस लड़ाईमें वह हार गई। स्थानीय समाचारके अनुसार भैरादेवी १६०८में मरी। ई० सन् १६२३ में इटलीका यात्री डेलाबेले (Deuavalle) इस नगरको एक प्रसिद्ध नगर लिखता है। हाँ, उस समय नगर और राजमहल नष्ट हो गये थे। यह नगर काली मिर्चके लिए इतना प्रसिद्ध था कि पुर्तगालियोंने गेरुसोप्पेकी रानीको Pepper queen लिखा है। वर्तमान गाँवसे प्राचीन नगरका ध्वंशावशेष डेढ़ मील पर हैं। इस समय यहाँ पर सिर्फ पाँच जैन मन्दिर हैं। वे भी सघन जंगलके बीचमें। उपर्युक्त पाँच मन्दिर पार्श्वनाथ, वर्धमान, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ पद्मावती और चतुर्मुख। इनमें चतुर्मुख बड़ा सुन्दर है। पद्मावती मन्दिरमें पद्मावती तथा अम्बिकाकी मूर्तियाँ और नेमिनाथ मन्दिरमें नेमिनाथकी मूर्ति सर्वथा दर्शनीय है। शेष मूर्तियाँ भी कलाकी दृष्टिसे कम सुन्दर नहीं हैं। चतुर्मुख मन्दिर बाहरके द्वारसे भीतरके द्वार तक ६३ फुट लम्बा है। मन्दिर २२ वर्ग फुट है। बाहर २४ फुट है। मण्डप और मन्दिरके द्वारों पर हर तरफ द्वारपाल मुकुट सहित वर्तमान हैं। मन्दिर भूरे पाषाणका है। इसके चार बड़े, मोटे, गोल खम्भे देखने लायक यहाँ हैं। के शिलालेख भी प्रकाशित हो चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि 'गेरुसोप्पे' एक प्राचीन दर्शनीय स्थान है।

(४) हाडुहल्लि—इसका प्राचीन नाम संगीतपुर है। हाडुहल्लि भटकलसे उत्तर पूर्व ११ मील पर है यहाँ पर भी तीनों मन्दिरोंके सिवा दर्शनीय वस्तु और कुछ नहीं है। हाँ, जहाँ-तहाँ भग्नावशेष अवश्य दृष्टिगत होते हैं। इन सबोंसे सिद्ध होता है कि एक जमानेमें यह एक वैभवशाली नगर रहा है भग्नावशेषोंमें मन्दिर, मकान और किला आदि हैं। पर अब अवशिष्ट ये चीजें भी जंगलमें विलीन होती जा रही हैं। इस समय यहाँ पर चारों ओर सघन जंगलका ही एकाधिपत्य है तीन मन्दिरोंमेंसे शिलामय एक मन्दिर अधिक सुन्दर है परन्तु साथ ही साथ जीर्ण भी। दूसरा एक मन्दिर भी शिलामय अवश्य है, पर कलाकी दृष्टिसे यह सामान्य है। तीसरा मंदिर मामूली मृण्मय है हाँ इसमें विराजमान २४ तीर्थंकरोंकी शिलामय मूर्तियाँ अवश्य अवलोकनीय हैं। इसमें यक्षी पद्मावतीकी मूर्ति भी है, जिसे जैन जैनेतर बड़ी भक्तिसे पूजते हैं। शेष दो मंदिरोंकी मूर्तियाँ भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कलाकी दृष्टिसे बुरी नहीं हैं। हाँ ये दोनों मंदिर अनंतनाथ मंदिरके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन मंदिरोंके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता है। यहाँ पर इस समय पुजारीके मकानके अलावा जैनोंका सिर्फ एक मकान और है यहाँ पर भी कई शिलालेख मिले हैं। ये बम्बई सरकारकी ओरसे प्रकट हो चुके हैं।

(५) भटकल—इसका प्राचीन नाम मणिपुर है। यह नगर होन्नावर तालुकमें होन्नावरसे २४ मील दक्षिण अरब समुद्रमें गिरने वाली एक नदीके मुहाने पर बसा हुआ है। चौदहवीं और सोलहवीं शताब्दीसे यह व्यापारका केन्द्र रहा है। कप्तान हैमिलटनने इस नगरका उल्लेख गौरवके साथ किया है। १८वीं शताब्दीके प्रारंभमें यहाँ पर जैन और ब्राह्मणोंके बहुतसे मंदिर थे। जैनमंदिरोंकी रचना अधिक प्राचीन कालकी है। यहाँके जैनमंदिरोंमें चंद्रनाथ मंदिर विशेष उल्लेखनीय है यह सबसे बड़ा है, साथ ही साथ सुन्दर भी। मंदिर एक खुले मैदानमें स्थित है और उसके चारों तरफ एक पुराना कोट है इसकी लम्बाई ११२ फुट तथा चौड़ाई ४० फुट है।

इसमें अग्रशाला, भोग मण्डप तथा खास मंदिर हैं। मंदिरमें दो खन हैं। प्रत्येक खनमें तीन तीन कमरे हैं। इनमें पहले अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि और पार्श्वनाथकी मूर्तियां विराजमान थीं। परन्तु अब वे मूर्तियां यहां पर नहीं हैं। भोग मण्डप की दीवालोंमें सुन्दर खिड़कियां लगी हैं। अग्रशाला का मंदिर भी दो खनका है। प्रत्येकमें दो कमरे हैं, जिनमें ऋषभ, अजित, शंभव, अभिनन्दन तथा चन्द्रनाथ की प्रतिमाएँ विराजमान थीं। वे भी अब वहाँ पर नहीं हैं। सामने १४ वर्गफुट चबूतरे पर २१ फुट ऊँचा चौकोर गुंबज वाला पाषाणमय सुंदर मानस्तंभ खड़ा है। मंदिरके पीछे १६ फुट लंबा ब्रह्मयक्षका खंभा भी है। इस मंदिरको जट्टप्प नायकने बनवाया था। इसकी रक्षाके लिये निर्माताके द्वारा उस समय बहुतसी जमीनें दी गई थीं, जिनको टीपू सुलतानने ले लिया है। शांतिश्वर मंदिर भी लगभग इस मंदिरके समान था। पर अब वह मुसलमानोंके हाथ में है। पार्श्वनाथ मंदिरमें इस समय मूर्तियां अवश्य हैं। यह मंदिर ५८ फुट लंबा और १८ फुट चौड़ा है। यह शा० श० १४६५ में बना था। यहां बहुतसे शिलालेख मिले हैं। इन्हें बम्बई सरकारने प्रकाशित कराया है। इस प्रांतके अनेक शिलालेख, सुन्दर मूर्तियाँ आदि अब 'कन्नड़ संशोधन मंदिर' धारवाड़में बम्बई सरकारकी ओरसे रक्षित हैं।

(६) बिलिगि—इसका प्राचीन नाम श्वेतपुर है वह सिद्धापुरसे पश्चिम पांच मील पर है। यहांके महत्वपूर्ण प्राचीन जैनस्मारकोंमें पार्श्वनाथमंदिर ही प्रमुख है। यह मंदिर कलाकी दृष्टिसे विशेष उल्लेखनीय है। द्राविड़ ढंगका यह मंदिर पश्चिम मैसूरके द्वार समुद्र (हलेबीडु) स्थित विष्णु मंदिरसे मिलता है। इसकी नक्काशीका काम वस्तुतः दर्शनीय है। कहा जाता है कि बिलिगि नगरको जैन राजा नरसिंहके पुत्रने बनाया था। महाराजा नरसिंह बिलिगिसे पूर्व चारमील पर होसूरमें लगभग ई० सन् १९९३ में राज्य करता था। कहते हैं कि उपर्युक्त पार्श्वनाथ मंदिरको इस नगरको बसाने वाले राजाने ही बनवाया था। यहां पर भी महत्वपूर्ण कई शिलालेख हैं। ये शिलालेख भी बम्बई सरकारकी ओरसे प्रकट हो चुके हैं। श्रीयुत् एम० गणपतिरावके मतसे शा० श० १४०० से १६८१ तक बिलिगिमें जैनोंका ही राज्य था। यहांके शिलालेखोंसे सिद्ध होता है कि ऐलुर ग्राममें पार्श्वनाथ देवालयको बनवाने वाला राजा कल्लप्प (चतुर्थ), बिलिगि में पार्श्वदेव जिनालयको निर्माण कराने वाला अभिनव हिरिय भैरव ओडेय (अष्टम) और इसी बिलिगिमें शांतिनाथ देवालयको स्थापित करने वाला राजा तिम्मण्ण ये तीनों बिलिगिके जैन शासक थे। साथ ही साथ यहांके राजा रंग (त्रयोदश), राजा इम्मडि धरेंद्र (चतुर्दश) और राजा रंगप्प पंचदश) भी जैन धर्मानुयायी थे और इनके द्वारा जैन देवालय, मठ आदि निर्माण कराये गये थे। उपर्युक्त सभी शासकोंने इन जिनायतनोंको यथेष्ट दानभी दिया था। बिलिगिके शासकोंके राजगुरु संगीतपुरके भट्टाकलंक थे। यद्यपि उत्तर कन्नड़में मंकि, होन्नावर, कुमटा और मुरडेश्वर आदि और भी कई स्थान हैं जिनमें जैन स्मारक पाये जाते हैं और जिनका उल्लेख आवश्यक है। पर लेख वृद्धिके भयसे इस समय उन स्थानोंके सम्बन्धमें कुछ भी न लिख कर, यह लेख यहाँ पर समाप्त किया जाता है। अन्तमें मैं भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभाके महामन्त्री श्रीमान् परसादीलालजी पाटनी दिल्लीको धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनकी कृपासे गत '५२ के अप्रैल मासमें इन स्थानोंका दर्शन कर सका।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा, चेतना या जीवन

(ले० अनंत प्रसादजी B. Se. Eng. 'लोकपाल')

संसारमें हम दो प्रकारकी वस्तुएँ देखते हैं । एक निर्जीव और दूसरी सजीव । सजीवोंका भी बाहरी शरीर या रूप-आकार निर्जीव वस्तुओं, धातुओं या रसायनोंका ही बना हुआ होता है। सजीवोंमें चेतना, ज्ञान और अनुभूति रहती है जबकि निर्जीव वस्तुएँ एकदम अचेतन, अज्ञान और जड़ होती हैं। मानव, पशु, पक्षी, कृमि कीट पतंग, मछली, पेड़ पौधे इत्यादि जानदार, सजीव या जीवधारी हैं. पहाड़, मदी, पृथ्वी, पत्थर, सूखी लकड़ी, शीशा, धातुएँ, जहाज, रेल, टेलीफोन, रेडियो, बजली, प्रकाश, हवा, बादल, मकान, इत्यादि निर्जीव वस्तुएँ हैं। दोनों की विभिन्नताएँ हम स्वयं देखते, पाते और अनुभव करते हैं। एक टेलीफोनके खंभेके पास यदि कोई गाना बजाना करे तो खंभेको कोई अनुभूति नहीं होगी—वह जड़ है। टेलीफोनके यन्त्रों और तारों द्वारा कितने संवाद जाते आते हैं पर वे यन्त्र या तार उन्हें नहीं जान सकते न समझ सकते हैं—उनमें यह शक्ति ही नहीं है। पर यदि मनुष्यसे कोई बात कही जाय तो वह तुरन्त उस पर विचार करने लगता है और उसके अनुसार उसके शारीरिक और मानसिक कार्य-कलाप अपने आप होने लगते हैं। एक पशु कोई चीज या रोशनी देखकर या आवाज सुनकर बहुतसी बातें जान जाता है जबकि कोई निर्जीव वस्तु ऐसा कुछ नहीं करती न कर सकती है। एक आईनेमें प्रतिविम्ब कितनेभी पड़ते रहें आईना स्वयं उनके बारेमें कोई अनुभूति नहीं करता पर एक मानवकी आखोंमें वेही प्रतिविम्ब तरह तरहके विचार उत्पन्न करते हैं । जीव-धारियोंको मारने, पीटने, दबाने, बेधने, जलाने आदिसे पीड़ा या दुखका अनुभव होता है जबकि निर्जीवोंको वैसा कुछ भी नहीं होता। लोहे या चान्दीके लम्बे लम्बे तार खींच दिए जाते हैं या चदरें तैयार कर दिए जाते हैं, शीशेके टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाते हैं धातुओंको आगकी तापमें गला दिया जाता है पर उन्हें जराभी पीड़ा कष्ट आदि होते नजर नहीं आते क्योंकि उनमें ज्ञान या चेतना एकदमही नहीं है

जैसे निर्जीव वस्तुओंकी किस्में रूप गुणादिकी विभिन्नताको लिए हुए अगणित, असंख्य और अनंत हैं उसी तरह जीवधारियोंकी संख्या और किस्में भी रूप, गुणादि एवं चेतनाकी कमीवेशी आदिकी विभिन्नताको लिए हुए अगणित, असंख्य और अनंत हैं । जीवधारियोंका विभाग उनकी चेतनाकी कमीवेशीके अनुसार जैन शास्त्रोंमें बड़ी सूक्ष्म रीतिसे किया हुआ मिलता है। एक इन्द्रिय वाले, दो इन्द्रियों वाले, तीन इन्द्रियों वाले, चार इन्द्रियों वाले, पाँच इन्द्रियों वाले तथा पाँच इन्द्रियोंमें मन वाले और बेमन वाले करके कई मुख्य विभाग किए गए हैं। एक इन्द्री वाले जीव वे हैं जिनमें चेतना ज्ञान या अनुभूति कमसे कम रहती है— ये प्रायः जड़ तुल्य ही हैं—फिरभी इनमें जीवन और मृत्यु है और शरीरके साथ चेतना भी है—भलेही वह चेतना सूक्ष्मातिसूक्ष्म अथवा कमसे कम हो पर रहती अवश्य है। यही चेतना जड़ या निर्जीव और सजीव या जानदारके भेदको बनाती तथा प्रदर्शित करती है। चेतनाही जीवका लक्षण या पहिचान है।

अब प्रश्न यह उठता है कि निर्जीवोंमें यह ज्ञान-अनुभूतिमई चेतना क्यों नहीं रहती है और सजीवोंमें कहांसे कैसे क्यों हो जाती या रहती है? विभिन्न दर्शनों और मतावलम्बियोंने इस समस्याको हल करनेके लिए विभिन्न विचारोंका आविष्कार कर रखा है। धर्मों और संप्रदायोंका मतभेद प्रथमतः यहींसे आरम्भ होता है और संसारके सारे भेदभावों एवं झगड़ोंकी जड़भी हम इसे ही कह सकते हैं। मनुष्यने अनादिकालसे अबतक ज्ञान विज्ञानमें कितनी वृद्धि की पर यह प्रश्न अबभी ज्योंका त्यों जटिलका जटिलही बना रहा। आधुनिक विज्ञानभी अबतक इसका समाधानात्मक एवं निर्णयात्मक कोई निश्चित उत्तर या हल नहीं दे सका है। जितना जितना विद्वानोंने इसे सुलझाने और समझने-समझानेकी चेष्टाकी यह उतनाही अधिकाधिक उलझता और गूढ होता गया।

जैनदर्शनने इस समस्याका बड़ाही विधिवत, व्यवस्थित वैज्ञानिक, परस्पर अविरोधी बुद्धिपूर्ण, सुतर्कयुक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और श्रृंखलाबद्ध समाधान संसारके सामने बड़े प्राचीन कालसे रखा है—परन्तु धार्मिक कट्टरता द्वेष-विद्वेष, छोटे बड़ेकी भावना तथा सुज्ञानकी कमी और तरह तरहके दूसरे कारणोंसे वह शुद्ध ज्ञान कुछही लोगों तक सीमित रह गया तथा संसारमें फैल नहीं सका। अब इस तर्क-बुद्धि-सत्यके युगमें इस शुद्ध, सही सुज्ञानको स्वकल्याण और मानव कल्याणके लिए विशद रूपसे विश्वमें फैलाना हमारा कर्तव्य है।

विविध स्थानों, समयों, वातावरणोंमें पैदा होने पलने और रहनेके कारण मनुष्यकी प्रवृत्तियोंमें महान् विभेद और अन्तर तथा विभिन्नताएँ रहती हैं। योग्यता, शिक्षा और ज्ञानकी कमी-बेशीभी सभी जगह सभी व्यक्तियोंमें रहती ही हैं। इन विविध कारणोंसे विचार धर्म और दर्शनकी विविधता होना भी स्वाभाविक ही है। यदि ये स्वयं स्वाभाविकरूपमें ही विकसित होते तो कोई हर्ज नहीं था—अंतमें विकासके चरमोत्कर्षपर सब जाकर एक जगह अवश्य मिल जाते, पर सांसारिक निम्न स्वार्थ और अहंकारने ऐसा होने नहीं दिया—यही विडम्बना है। करीब करीब सभी अपनेको सही और दूसरेको कमवेश ग़लत कहते हैं। एक दूसरेकी बात समझ कर एक दूसरेसे मिलजुल कर एक निश्चित अंतिम मार्ग निकालना लोग पसन्द नहीं करते—संसारकी दुर्दशाओंका जनक और मुख्य स्रोत विरोधाभास रहा है। सारा संसार एक बहुत बड़े परिवारकी तरह एक है और मानवमात्र एक दूसरेसे संबन्धित निकटतम रूपसे उस परिवारके सदस्य हैं। अब तो विज्ञानके बहुव्यापी विकास और यातायातके साधनोंकी उन्नतिके कारण मानवमात्र और अधिक एक दूसरेके निकट आ गये हैं और आते जाते हैं। हर एकका कल्याण हर एक दूसरे और सबके कल्याणमें ही सन्निहित है। अब तो मानवमात्रके कल्याण द्वाराही अपना कल्याण होना समझकर सबको विरोधों और अज्ञान तथा कुज्ञानको जहांतक भी संभव हो सके दूर करना ही पहला कर्तव्य होना चाहिए।

तर्क और बुद्धिकी कसौटी पर कसकर जो सिद्धांत ठीक, सही और सत्य जंचे उसेही स्वीकार करना और बाकीको भ्रमपूर्ण या मिथ्या घोषित करके छोड़नाही बुद्धिमानी कहा जा सकता है—अन्यथा केवल रूढ़ियोंको पकड़े रहना बड़ाही हानिकारक है। सुज्ञान या सही ज्ञानसे ही व्यक्तिकी और मानवताकी सच्ची उन्नति हो सकती है।

जो कुछ हम इस विश्व या संसारमें देखते या पाते हैं उस सबका अस्तित्व (Existance) है। यह अस्तित्व वह प्रत्यक्ष सत्य है जिसका निराकरण करना या जिसे नहीं मानना भ्रम तथा गलती है। कुछ नहीं (शून्य, Vacum) से कोई वस्तु (Matter) न उत्पन्न हो सकती है न बन या बनाई जा सकती है। मिट्टीसे ही घड़ा बनाया जा सकता है या बन सकता है बिना वस्तुके आधारके वस्तु या वास्तविक कुछ नहीं हो सकता। संसार में जो कुछ है वह सर्वदासे था और सर्वदा रहेगा—यही वैज्ञानिक, सुतर्कपूर्ण और बुद्धियुक्त सत्य है। इसके विपरीत कोईभी दूसरी धारणा ग़लत है। वस्तुओंके रूप परिवर्तित होते या अदलते बदलते रहते हैं। मिट्टीके कणोंको इकट्ठा कर पानीकी सहायतासे निर्माण योग्य बनाकर घड़े का उत्पादन होता है और पुनः घड़ा टूट फूट कर ठिकरों या कणों इत्यादिमें बदल जाता है। हो सकता है कि यह हमारा संसार (पृथ्वी) किसी समय बर्तमान जलते सूर्यकी तरह ही कोई जलता गोला रहा हो या धूल-कणों और गैसों का 'लोंन्दा' रहा हो और बादमें इनमें शक्लें बनती गई हों, तरह तरहके रूप होते गए हों। शकलों और रूपोंका बनना बिगड़ना तो अबभी लगा ही हुआ है। उस 'गोले' या 'लोन्दे' में जीव और अजीव दोनोंही सूक्ष्म या स्थूल रूपमें रहे ही होंगे। वस्तुओंके सूक्ष्म और स्थूल रूप एक दूसरेके संगठनऔर विघटनसे बनते बिगड़ते रहते हैं। सर्वथा नया कुछभी पैदा नहीं हो सकता न पुरानेका सर्वथा नाश हो सकता है संयोग, वियोग, संघठन विघठम और परिवर्तन इत्यादि द्वारा ही हम कुछ नया उत्पन्न हुआ देखते या पाते हैं और पुरानेका विनाश हुआ सा दीखता है। पर वास्तवमें उसका विनाश नहीं होता, वह अपनी सत्ताको सदा कायम रखता है इसीसे वह ध्रुव भी कहलाता है। प्रत्येक पदार्थ बाह्य परिणमनसे अपने स्वाभाविक गुणको नहीं छोड़ता, किंतु वह ज्यों का त्यों बना रहता है। यदि उसके अस्तित्वसे इन्कार भी किया जाय तो फिर पदार्थोंकी इयत्ता (मर्यादा) कायम नहीं रहती। चेतन, अचेतन पदार्थ अपने अपने अस्तित्वसे सदाकाल रहे हैं और रहेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अचेतन जड़ पदार्थोंसे कुर्सी, मेज, तख्त, किवाड़, छड़ी, खड़ाऊँ, डैक्स, सन्दूक आदि विविध वस्तुएँ बनाये जाने पर भी उनकी जड़ता और पुद्गलपने (Matter) का अभाव नहीं होता, प्रत्युत वह सदाकाल ज्योंका त्यों बना रहता है। इससे ही उसके सदाकाल अस्तित्वका पता चलता है। चेतना जड़ वस्तुओंका गुण नहीं है किन्तु वह तो जीवका असाधारण धर्म है जो उसे छोड़कर अन्यत्र नहीं पाया जाता फिर भी दोनोंका अस्तित्व जुदा जुदा है। अतः अचेतनके अस्तित्व (existance) के समान उसका भी 'अस्तित्व' है और सर्वदासे था तथा सर्वदा रहेगा। अचेतन वस्तुओं और चेतन देहधारियों (वस्तुओं) में इतना बड़ा विभेद प्रत्यक्ष रूपसे हम पाते हैं कि यह मानना ही पड़ता है कि 'चेतना' कोई ऐसा गुण है जो जड़-वस्तुओंका अपना गुण नहीं हो सकता—क्योंकि यदि जड़ वस्तुओंमें चेतनाका गुण स्वयं रहता तो हर एक सूक्ष्म या स्थूल जड़ वस्तुमें चेतना और अनुभूति,ज्ञान थोड़ा या अधिक अवश्य रहता या पाया जाता पर ऐसी बात नहीं है। इससे हमको मानना पड़ता है कि चेतनाका आधार या कारण जो कुछ भी हो उसका एक अपना अस्तित्व है और चेतना उसका स्वाभाविक गुण है—जो केवल मात्र जड़में सर्वथा अदृश्य या अनुपस्थित (Absent) है। किसी भी जीवधारीको लीजिये—उसका जन्म होता है और मृत्यु होती है। मृत्युके समय हम यह पाते हैं कि जीवधारीका शरीर या बाह्य रूप तो ज्यों का त्यों रहता है पर चेतना लुप्त हो गई होती है। शरीरके चेतना रहित हो जानेको ही लोकभाषामें मृत्यु कहते हैं। जब तक किसी शरीरमें चेतना रहती है उसे जीवित या जीवनमुक्त कहते हैं। शरीर तो वस्तुओं या विभिन्न धातुओंसे बना रहता है और यदि चेतना शरीरको बनाने वाले धातुओंका गुण रहता तो शरीरसे चेतना कभी भी लुप्त नहीं होती—पर चूंकि हम यह बात प्रत्यक्ष रूपसे देखते या पाते हैं इससे हमें मानना पड़ता है कि चेतना शरीरका निर्माण करने वाली वस्तुओं या धातुओंका अपना गुण नहीं हो सकता। तब चेतनाका आधार या श्रोत क्या है या वह कौनसी 'सत्ता' है जो जब तक शरीरमें विद्यमान रहती है तब तक उसमें चेतना रहती है और वह सत्ता हट जाने पर चेतना नहीं रहती—अथवा चेतना नहीं रहनेका अर्थ उस 'सत्ता' का नहीं रहना ही है और चेतना रहने या पाए जानेका अर्थ उस 'सत्ता' का रहना ही है इसी 'सत्ता को—जिसका गुण चेतना है या जिसके विद्यमान रहनेसे किसी शरीरमें चेतना रहती है भारतीय दार्शनिकोंने 'आत्मा' या 'जीव' कहा है आत्माका ही अपना गुण चेतना है। जहाँ आत्मा होगा वहाँ चेतना होगी जहाँ आत्मा नहीं रहेगा वहाँ चेतना नहीं होगी। पर यह चेतना भी किसी शरीर या किसी रूपी वस्तुमें (जिसे हम शरीर कहते हैं) ही पाई जाती है कि बिना शरीरके कहीं भी चेतना यों ही अपने आप परिलक्षित नहीं होती। इसका अर्थ यह होता है कि संसारमें बिना किसी प्रकारके शरीरके आधारके आत्मा या चेतनाका होना या पाया जाना सिद्ध नहीं होता। चेतना और वस्तु शरीरका संयुक्तरूपही हम जीवधारीके रूपमें पाते हैं। परन्तु चूंकि चेतना निकल जाने पर भी शरीर ज्योंका त्यों बना रहता है, उसका विघटन नहीं होता है इससे हम मानते हैं कि चेतनाका आधार कोई अलग 'सत्ता' है जो वस्तुके साथ रहते हुए भी उससे अलग होती है या हो सकती है। इस तरह जड़ वस्तुकी और आत्माकी अलग अलग अवस्थिति (existence) और 'सत्ताएँ' मानी गईं।

हर एक वस्तुके गुण उस वस्तुके साथ सर्वदा उसमें रहते हैं—गुण वस्तुको कभी भी छोड़ते नहीं। दो वस्तुयें मिलकर कोई तीसरी वस्तु जब बनती है तब उस तीसरी वस्तुके गुणभी उन दोनों वस्तुओंके गुणोंके संयोग और सम्मिश्रणके फलस्वरूपही होते हैं—बाहरसे उसमें नये गुण नहीं आते। इतनाही नहीं पुनः जब वह तीसरी वस्तु विघटित होकर दोनों मूल वस्तुओं या धातुओंमें परिणत हो जाती है तो उन मूल वस्तुओंके गुणभी अलग अलग उन वस्तुओंमें ज्योंके त्यों संयोगसे पहले जैसे थे वैसेही पाए जाते हैं—न उनमें जरासी भी कमी होती है न किसी प्रकारकी वृद्धि ही। यही वस्तुका स्वभाव या धर्म' है और सृष्टिका स्वतःस्वाभाविक नियम। इसमें विपरीतता न कभी पाई गई न कभी पाई जायगी।

दो एक रसायनिक पदार्थोंका उदारहण इस शाश्वत 'सत्य' को अधिक खुलासा करनेमें सहायक होगा। तूतिया (नीला थोथा Copper Sulphate या Cuson) में तांबा, गंधक और आक्सिजन निश्चित परिणामोंमें मिले रहते हैं। तूतियाके गुण इन मिश्रणवाली मूल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धातुओं या रसायनोंके गुणोंके मिश्रित फलस्वरूप अपने विशेष होते हैं—पर पुनः जब किसी प्रक्रिया या प्रक्रियाओं द्वारा इन विभिन्न मूल धातुओंको अलग अलग कर दिया जाता है तो उनके अपने गुण हर धातुके अलग अलग उन धातुओंमें पूर्णतः पाए जाते हैं या स्वभावतः ही रहते हैं। अब दूसरा उदाहरण लीजिए—गंधकका तेजाब (Sulphuric acid, $H_2 So_4$) इसमें हाइड्रोजन, गंधक और आक्सिजनका संमिश्रण (Compounding) रहता है, इसके भी अपने विशेष गुण होते हैं पर इसको बनाने वाली मूल धातुएँ या रसायनें अलग अलग कर दी जानेपर पुनः अपने मूल गुणोंके साथही पाई जाती हैं न जरा कम न जरा अधिक, सब कुछ ज्योंका त्यों। गंधक और आक्सिजन दोनों ही (उपरोक्त) दोनों सम्मिश्रणों (Compounds) में शामिल थे। दोनों सम्मिश्रणोंके गुण अलग अलग विभिन्न थे। पर जब गंधक और आक्सिजन पुनः सम्मिश्रणोंमें से निकल गए या अलग कर लिए गए तो उनमें गंधक और आक्सिजनके अपने अपने गुण ही रहे। एक तीसरा उदाहरण लीजिए :— जल ($H_2 O$)। इसमें हाइड्रोजन और आक्सिजनका मिलाप होता है। जलके गुण हम बहुत कुछ देखते, पाते या जानते हैं। जल एक तरल या द्रव (Liquid) पदार्थ है, जबकि इसके बनाने वाले दोनों अंश (Constituents) गैस या वायुरूपी पदार्थ हैं। सबके गुण अलग २ निश्चित हैं। शुद्ध अवस्थामें इनके अपने गुणोंमें जरा भी फर्क कभी भी कहीं भी किसी प्रकार भी नहीं पड़ सकता। इतनाही नहीं सम्मिश्रण होनेके पहले, सम्मिश्रणकालमें एवं सम्मिश्रण विघटित होने पर हर मूलधातुके गुण सर्वदा ज्योंके त्यों उन धातुओंके कणोंमें रहते हैं उनसे अलग नहीं होते न कमवेश होते हैं। हां, सम्मिश्रणकी अवस्थामें उन्हीं गुणोंके आपसमें संयुक्त रूपसे संघबद्ध हो जानेके कारण सम्मिश्रित वस्तुके गुणोंका निर्माण अपने आप गुणोंके सम्मिश्रण या संघबद्धताके फलस्वरूप (As a resultant) हो जाता है। पर पुनः संघबद्धता टूटने या विघटन होने अथवा मिश्रित धातुओंके अलग अलग हो जानेपर वे मूलगुण भी पुनः ज्योंके त्योंही अलग अलग हो जाते हैं या पाए जाते हैं। सम्मिश्रित या संघबद्ध वस्तुके आंशिक विघटन स्वरूप कोई एक या दो मूलधातुएँ ही अलग अलग निकलें तब भी उनके अपने गुणही उनमेंअलग अलग रहेंगे। अथवा ६–७ धातुओंके किसी सम्मिश्रित वस्तुसे दो दो तीन तीन धातुओंकी सम्मिश्रित वस्तुएँ अलग अलग निकलें तब भी उन अलग अलग हुए छोटे सम्मिश्रणोंमेंभी वे ही गुण पाये जायंगे जो उनके बनाने वाली धातुओंको यदि अलगसे उन्हीं अनुपातोंमें अलग मिलाकर वैसाही कोई सम्मिश्रण कभी बनाया जाता। इत्यादि। सारांश यह कि किसी भी वस्तुका गुण, शुद्ध दशामें सर्वदा वही रहता है। जो उसका गुण है; मिश्रणकी दशामेंभी मिश्रित वस्तुका गुण सर्वदा वही रहता है जो उस मिश्रणका होता है; जब भी मिश्रणसे वह वस्तु पुनः मूलरूपमें निकलती है तो वह अपने मूलगुणोंके साथही होती है और एक मिश्रणसे निकलकर दूसरा मिश्रण बनाने पर अथवा विभिन्न मिश्रणोंके संघटन या विघटनोंकी संख्या चाहे कितनी भी क्यों न हो मूल वस्तुओं या धातुओंके मूलगुण सर्वदा ज्योंके त्यों उनमें सम्मिलित रहते हैं और विभिन्न मिश्रणोंके गुण भी सर्वदा वे ही गुण होते हैं जो विशेष धातुओं, वस्तुओं या रसायनोंके विशेष परिमाणोंमें मिलाए जाने पर कभी भी हों या होते हैं। ये स्वयं सिद्ध प्रकृति या सृष्टि (Nature or Creation) के स्वाभाविक (Fundamental) नियम हैं। ये शास्वत, सत्य और ध्रुव हैं। इनमें विश्वास न करना या कुछ दूसरी तरहकी बातें सोचना समझना भ्रम, अज्ञान, ग़लती या ज्ञानकी कमीके कारण ही हो सकता है। आधुनिक विज्ञानने इन तथ्यों या सत्योंका प्रतिपादन ध्रुव या निश्चित और सर्वथा संशय रहित रूपसे कर दिया है-इसमें कोई शंका या आशंका या अविश्वासकी जगह ही नहीं रह गई है। वस्तुका अपना गुण या अपने गुण हजारों लाखों वर्षोंमें भी नहीं बदलते सर्वदा-शास्वत रूपसे वस्तु और गुण एकमेक रहते हैं। खनिज पदार्थोंको ही लीजिए लोहे वाले पत्थर (Iron pyrites) और आलुमीनियम वाले पत्थर (बौक्साइट Bauxite) न जाने सृष्टिके आरम्भमें जब पृथ्वी जमकर ठोस पदार्थके रूपमें पृथ्वी हुई तबसे कब बने थे पर अब भी उनके गुण ज्यों के त्यों हैं। सभी धातुओं और पदार्थोंके साथ यही बात है। गन्धक या आक्सिजन या हाइड्रोजन या तांबाके सम्मिश्रणके दो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं। गन्धक इत्यादिके जो गुण आजसे हजारों वर्ष पहले थे वे ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब भी हैं और वे ही आगे भी सर्वदा रहेंगे । गुण भी बस्तुके परिवर्तनके साथ ही बदल सकते हैं अन्यथा नहीं। वस्तुकी शुद्ध अवस्थाके गुण वस्तुकी शुद्ध अवस्थामें सर्वदा एक समान ही पाए जायेंगे कभी भी कमवेश नहीं। जब वस्तुओंका सम्मिश्रण होता है तब उनके गुणोंका समन्वय होकर नए गुण परिलक्षित होते हैं पर मूल वस्तु-के मूलगुण सर्वदा मूलवस्तुमें पूर्ण रूपसे सन्निहित रहते हैं-न अलग हो सकते हैं न कमवेश।

आत्माका गुण चेतना और जड़ वस्तुओंका गुण जड़त्व (अचेतना) भी अनादिकालसे उनके साथ हैं और रहेंगे। दोनोंमें संयोग होनेके कारण उनके गुणोंका समन्वय होकर जीवधारियोंके गुण विभिन्न रूपोंमें हम पाते हैं पर हर समय आत्माके गुण आत्मामें ही रहते हैं और शरीरको बनाने वाली जड़ वस्तुओं और रसायनोंके गुण जड़ वस्तुओं और रसायनोंके कारणों और संघोंमें ही रहते हैं। संयोगके कारण न तो आत्माका चेतनगुण जड़ वस्तुओंमें चला जाता है न जड़ वस्तुका गुण (जड़त्व) आत्मामें और जब भी दोनों अलग अलग होते हैं अपना अपना पूराका पूरा गुण लिए हुए ही अलग होते हैं।

विभिन्न जीवधारियोंके कार्य कलाप उनके शरीरकी बनावटके अनुसार ही होते हैं और हो सकते हैं । एक गाय गायके ही काम कर सकती है, एक चींटी चींटीके ही काम कर सकती है-एक सिंह सिंहके ही काम कर सकता है-अन्यथा होना कठिन और असंभव एवं अस्वा-भाविक है। एक मानव-शरीरसे जो कार्य हो सकते हैं वे एक पशु शरीरसे नहीं हो सकते। एक पशु-शरीरके कार्य एक पक्षी-शरीरसे नहीं हो सकते। एक पक्षीके कार्य कृमि-कीट शरीर धारियोंसे नहीं हो सकते इत्यादि। जीवात्मा शरीरके साथ एक मेक रहकर शरीरको चेतना मात्र प्रदान करता है पर उसकी शरीरकी कार्य क्षमताको बदल नहीं सकता※ ।

"जीव" (आत्मा) की चेतना भी शरीरकी बनावट एवं सूक्ष्मता स्थूलताके अनुसार कमवेश रहती है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें ज्ञानचेतना इतनी कम रहती है कि हम उन्हें जड़तुल्य ही मान लेते हैं । जैसे जैसे शारीरिक क्रमोन्नति रूपमें (Evolution by stages) होता जाता है आत्माकी चेतनाका बाह्य विकास भी उसी अनु-रूप बढ़ता जाता है। एकेन्द्रियमें भी कितनी ही किस्में हैं जिनमें एक शरीरसे दूसरे शरीरमें ज्ञान चेतनाकी उत्तरोत्तर वृद्धि पाई जाती है। एकेन्द्रियसे द्वीइन्द्रिय इत्यादि करके उत्तरोत्तर पंचेन्द्रियोंमें सबसे अधिक आत्मचेतना बाह्य रूपमें परिलक्षित होती है। उनमें भी मन वाले जीवोंमें और सर्वोपरि मानवोंमें चेतना अधिकसे अधिक उन्नत अवस्थामें मिलती है इसे अंग्रेजीमें विकाशवाद (Evolution) कहते हैं जिसकी हम अपने जैनशास्त्रोंमें वर्णित 'उर्ध्व गति' से तुलना लगा सकते हैं। (अगले अंकमें समाप्त।)

※ इस विषयकी थोड़ी अधिक जानकारीके लिए मेरा लेख "शरीरका रूप और कर्म" देखें जो ट्रैक्टरूपमें अमूल्य अखिल विश्व जैनमिशन, पो० अलीगंज, जि० एटा, उत्तर प्रदेशसे मिल सकता है।

सूचना

अनेकान्त जैन समाजका साहित्य और ऐतिहासिक पत्र है उसका एक एक अंक संग्रहकी वस्तु है। उसके खोजपूर्ण लेख पढ़नेकी वस्तु हैं। अनेकान्त वर्ष ४ से ११ वें वर्ष तककी कुछ फाइलें अवशिष्ट हैं, जो प्रचारकी दृष्टिसे लागत मूल्यमें दी जायेंगी। पोस्टेज रजिस्ट्री खर्च अलग देना होगा। देर करनेसे फिर फाइलें प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होंगी। अतः तुरन्त आर्डर दीजिये।

मैनेजर—'अनेकान्त'
१ दरियागंज, देहली

जैनसमाजका ५० वर्षका इतिहास

बाबू दीपचन्द्रजी जैन संपादक वर्धमान १९०१ से १९५० तकका तैयार कर रहे हैं। जिन भाइयोंके पास इस सम्बन्धमें जो सामग्री हो वह कृपया उनके पास निम्न पते पर तुरन्त भेजनेकी कृपा करें।

बाबू दीपचन्द जैन, सम्पादक वर्धमान, तेलीवाड़ा, देहली.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन जैन साहित्य और कलाका प्राथमिक परिचय

(एन० सी० वाकली वाल)

साहित्य और कलामें जैन समाजकी हजारों वर्ष प्राचीनकालकी संस्कृति भरी पड़ी है। जैनधर्मका प्रचार बौद्धधर्मकी भांति विदेशोंमें नहीं हुआ था किन्तु वह भारतवर्षमें ही सीमित रहा। इस देशमें धार्मिकता, विद्वेष और विदेशी आक्रमणोंके कारणोंके कारण जैन-साहित्य और जैनकलाका रोमांचकारी हनन हुआ वह तो एक ओर, किन्तु स्वयं जैन धर्मावलम्बियोंकी असावधानी और स्वामित्वलालसासे भी विशेष कर साहित्यका विनाश और प्रतिबंध हुआ। फलतः अनेक महत्वपूर्ण प्राचीन रचनाओंका अभी तक पता नहीं लग पाया है और अनेक कृतियों परसे जैनत्वकी छाप मिट चुकी है।

फिर भी जैन साहित्य इतना विशाल और समृद्ध है कि ज्यों ज्यों उसको बंधनमुक्त किया जा रहा है या प्राप्त करनेका प्रयत्न किय जाता रहा है त्यों त्यों अनेक महत्व-पूर्ण रचनायें उपलब्ध होती आरही हैं परन्तु यह कार्य अभी तक बहुत मंदगतिसे ही चल रहा है। उत्तर भारत और मध्य भारतमें. जहाँ कि विद्वानोंने विरोधके बावजूद ग्रन्थ प्रकाशनमें प्रगति जारी रखी और जैनग्रन्थोंको बधंनमुक्त कराने, संग्रहालय स्थापित कराने एवम् जिनवाणीके उद्धारके प्रति समाजमें चेतना लानेका कार्य अनवरत किया, वहां भी अब तक सभी भण्डारोंकी सूचियाँ एकत्र नहीं हो सकीं। कहां कहां किन किनके अधिकारमें कुल मिला-कर कितने हस्तलिखित ग्रन्थ हैं इसका मोटा ज्ञान भी अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। और दक्षिण प्रान्तका हाल तो और भी अधिक चिन्तनीय है। दक्षिणकी कनड़ी, तेलगू आदि लिपियोंमें बड़ी संख्यामें दिगम्बर जैन साहित्य है और वह उत्तर व मध्य भारतकी अपेक्षा प्राचीन भी है परन्तु उसमेंसे थोड़े ही साहित्यकी प्रतिलिप देवनागरीमें हो पाई है। दक्षिण भारतकी भाषा और लिपि शेष भारतकी भाषा और लिपिसे अत्यन्त क्लिष्ट और असम्बद्ध होनेके कारण इधरकी प्रगतिका प्रभाव उधर बहुत ही कम मात्रामें पड़ा, उधरके जैनबंधुओंसे इधरके जैन-बंधुओंका सम्पर्क भी कम पड़ता गया, उनके सामाजिक रीति रिवाज और पूजा विधानकी क्रियायें उधरके अन्य धर्मावलम्बियोंके रीति-रिवाज और क्रियाकाण्डसे अधिकाधिक मिलती चली गईं और आज अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है कि दक्षिणके कई स्थानोंमें जैन संस्कृतिका ही एक प्रकाशसे लोप हो गया है। उधरके अनेक मन्दिरोंकी अवस्था अतिशय शोचनीय हो गई है। उन मंदिरोंमें जो ग्रंथ रहे होंगे या हैं उनकी अवस्थाका अनुमान, सहज ही किया जा सकता है। उत्तर व मध्य भारतमें कागज पर लिखनेकी प्रथा प्रचलित होनेके बाद भी दक्षिण भारतमें ताड़पत्र और भोजपत्रका उपयोग बहुत समय तक होता रहा था और उन ताड़पत्रों पर लगातार तेल ब्रश न करनेके कारण उनकी आयु असमय में क्षीण हो जाना अनिवार्य है; चूहों, कीड़ों और सर्दी पानीसे भी वहांके ग्रंथोंका विनाश काफी मात्रामें होगया होगा, जबकि वे असावधानी और अवहेलनासे ग्रसित हुये होंगे। फिर भी भट्टारकोंके अधिकारमें व कुछ मंदिरों और व्यक्तियोंके संग्रहालयोंमें एक बड़ी राशिमें अब भी ग्रंथ मौजूद हैं परंतु उनको प्राप्त करनेमें या वहीं पर उनकी सुरक्षाका समुचित प्रबंध करनेमें शीघ्रता नहीं की जायगी तो भय है कि जैनसमाज इस अमूल्य निधिसे सदाके लिये हाथ धो बैठेगी।

जिस किसी वस्तु पर जैनधर्म और जैनपुरातत्व-सम्बन्धी कोई लेख उपलब्ध हो वही साहित्य है। अतएव ग्रन्थोंके साथ साथ शिलालेख, ताम्रपत्र, पट्टावलियां, गुर्वावलियां, मूर्तिके नीचेका उत्कीर्ण भाग, चरणपादुका-के लेख, ऐतिहासिक पत्र आदि सभी सामग्री साहित्यके इस व्यापक अर्थमें समावेशित है। समय निर्णय, तत्त्व विचार आदिकी दृष्टिसे यह सभी सामग्री अत्यन्त महत्व रखती है और भारतीय इतिहासका प्रत्येक अध्याय इस पुरातत्व को प्रकाशमें न लानेसे अपूर्ण रहता है।

अतएव साहित्यका मूल्यांकन उस पर लगी हुई लागत परसे नहीं किया जा सकता हैं। यदि लेखकोंका कागज कलम स्याहीका मूलप्रतिका और स्थानका साधन जुटाकर आज एक ग्रंथकी प्रतिलिपि ५००) के खर्चसे हो सकती हैं सो उसमें सालभरका समय, उसको मूल प्रतिके साथ मिलाकर शुद्ध करनेमें विद्वानके कार्य और देखरेख का मूल्य मिलाकर उसका जो मूल्यांकन हो सकता है उससे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सौ गुणा मूल्य भी उसकी प्राचीनतर प्रतिके लिये ऐतिहासिक दृष्टिसे यथेष्ट नहीं है। यह अगाध सम्पत्ति जो पूर्वाचार्यों मुनियों, भट्टारकों, विद्वानों और अन्य पूर्वजोंने संसारके प्राणियोंके कल्याणकी भावनासे अपने ध्यान स्वाध्याय और आत्म चिन्तवनको गौण करके समाजके हाथोंमें सौंपी है उसकी रक्षाका उपाय न करना वास्तवमें अपने पूर्वजोंकी, धर्मकी और भगवान केवलीकी अवहेलना करना है क्योंकि श्रुतज्ञानको तीर्थंकर भगवानके समान ही पूजनीय माना गया है। साहित्यकी किसी भी अजोड़ वस्तुका विनाश होनेके कारण धर्मसे लेकर देश तकका और कभी कभी संसार तकका अहित हो सकता है। यदि कुन्दकुन्द स्वामीकी कुछ अनुपलब्ध कृतियोंकी भाँति समयसारादि कृतियां भी विनष्ट होगई होतीं तो अनेक सैद्धान्तिक शंकायें जो विद्वानोंके मनमें उठा करती हैं वे या तो उठती ही नहीं, या उनका समाधान प्रमाण पूर्वक तुरन्त हो जाता।

ग्रन्थ रचना किन्हीं खास व्यक्ति, समुदाय या फिरके के लिये नहीं किन्तु प्राणीमात्रके हितके लिये की गई है, ज्ञानोपार्जन द्वारा आत्मस्वरूपको पहचानने और आत्म कल्याणके निमित्त तत्पर होनेसे ही शास्त्रोंकी सच्ची भक्ति होती है और वह ज्ञानोपार्जन शास्त्रोंकी आलमारीके सामने अर्घ्य चढ़ाने और स्तुति पढ़नेसे नहीं, उनके पठन पाठनसे होती है। अतएव उनके पठन पाठनकी सुविधाका अधिकसे अधिक प्रसार करना ही जिनवाणीके प्रति सच्ची श्रद्धा और भक्ति है। इसके प्रतिकूल उनके पठन पाठन पर रोक लगाने और उनको तालोंमें बंद कर उन पर स्वामित्व स्थापित करनेके परिणाम स्वरूपमें जो अवस्था उत्पन्न हुई, वह वर्णातीत है।

रोकथाम और तालाबन्दीके कारण पठन पाठनकी प्रणालीमें ह्रास हुआ उसके साथही अब मुद्रणकलाके युगमें बहुतसे ग्रन्थ छप जानेके कारण हस्तलिखित ग्रन्थों परसे पठन पाठनकी प्रथा उठती जा रही है। परन्तु यह न भूलना चाहिये कि हस्तलिखित ग्रंथ परसे स्वाध्याय करनेमें प्राचीन समयके कागजकी बनावट, स्याहीकी चमक, अक्षरकी सुंदरता व सुघड़ता तत्कालीन लेखनकला और परिपाटीके प्रत्यक्ष दर्शनसे हृदयमें जो श्रद्धा, भक्ति और भावशुद्धिका उदय और संचार होता है वह मुद्रित ग्रंथपरसे नहीं हो सकता है। इस कथनकी सत्यता उन सभी व्यक्तियोंने स्वीकारकी है जिनने छपे ग्रंथको स्वाध्याय करते करते कारणवश उसी ग्रंथकी प्राचीन प्रतिसे स्वाध्याय करना शुरू किया है। हस्तलिखित ग्रंथ परसे स्वाध्याय करनेमें प्राचीनताकी छाप बनी रहती है और इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि ग्रंथोंकी देख रेख बराबर रहनेसे चूहे, दीमक, कीड़े और सर्दी आदि उपद्रवोंसे ग्रंथ बचे रहते हैं। अतएव जिनवाणीको हमेशा उपयोगकी वस्तु समझकर हस्तलिखित ग्रंथों परसे पठन पाठन करनेकी प्रथाको प्रोत्साहन देना आवश्यक है। एक तो प्रतिलिपि करानेमें खर्च बहुत आता है, दूसरे लेखकोंका और मूल शुद्ध प्रतिका मिलना कठिन होनेसे हस्तलिखित ग्रंथोंकी कहींसे मांग आती है तो वह सहजही ठीक रीतिसे और ठीक समय पर पूरी नहीं हो पाती है इस कारण दिन दिन छापेके ग्रंथोंपरसे पठन पाठनका रिवाज बढ़ता जा रहा है। परन्तु अनेक कारणोंसे ऐसा होना ठीक नहीं है। यदि इसी प्रकार होता रहा तो हस्तलिखित ग्रंथोंकी लिपिका पढ़ना भी कुछ वर्षों बाद कठिन हो जायेगा। आज भी बहुतसे पंडित प्राचीन प्रतियोंकी लिपि पढ़नेमें असमर्थ रहते हैं कारण उनको अभ्यास नहीं है। अतएव जहां तक संभव हो, मंदिरोंमें, शास्त्रसभाओंमें, उदासीनाश्रमोंमें और मुनिसंघोंमें शास्त्र स्वाध्याय हस्तलिखित प्रति परसे होना चाहिये।

इस सुरक्षात्मक दृष्टिसे ग्रंथोंकी किसी एक स्थान पर अनेकानेक प्रतियोंका जमाव करनेकी अपेक्षा जहां जहां जिन ग्रंथोंकी आवश्यकता हो वहां वहां आवश्यकतानुसार प्रतियोंका विकेन्द्रीकरण होना चाहिये।

यह तभी हो सकता है जबकि छोटे बड़े सभी स्थानोंके मंदिरों, भंडारों व व्यक्तियोंके आधीन हस्तलिखित ग्रंथोंकी सूची प्राप्तकी जाय और उन पृथक् पृथक् सूचियों परसे एक सम्मिलित सूची ग्रन्थ कमसे कम तैयार हो जिससे पता लगे कि किस ग्रन्थकी कुल मिलाकर कितनी प्रतियाँ हैं, वे कहां कहां हैं किस अवस्थामें हैं, वे जहां हैं वहां उनका पठन पाठनके लिये उपयोग होता है या नहीं, यदि नहीं तो अन्य स्थान पर उनकी आवश्यकता है या नहीं। यदि अन्य स्थान पर उनकी आवश्यकता हो तो या तो अन्यस्थानके अनावश्यक ग्रंथोंके द्वारा या उसका उचित मूल्य निर्धारण द्वारा या वापसीके करारपर ग्रंथको एक स्थानसे दूसरे स्थान भिजवानेकी व्यवस्था होनी चाहिये। प्राचीनतर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिका ज्ञानभी सम्पूर्ण स्थानोंकी सूची प्राप्त होने पर ही हो सकता है। एक स्थानकी आवश्यकता अनावश्यकताका ज्ञान भी सम्पूर्ण स्थानोंकी सूचीके बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है तथा जीर्ण ग्रंथोंका उद्धारभी तब तक असंभव बना रहता है। अपूर्ण ग्रन्थोंकी पूर्तिभी सम्पूर्ण स्थानोंकी सूची प्राप्त होने पर अनायास और सहज ही हो सकती है। अतएव सभी दृष्टियोंसे सूचीका कार्य पूरा करना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है तथा प्राथमिक आवश्यकताका विषय है। इसी प्रकार कलाभी अत्यन्त चिन्तनीय स्थितिमें है। कलाके कई भेद हैं, यथा—

कला

खनन, वास्तु, शिल्प, लेखन, चित्र, सूची, नृत्य, अनुष्ठान ध्यान आदि। इसके प्रतीक :—

तीर्थ मंदिर गुफा स्तंभ स्तूप वेदी सिंहासन द्वार तोरण

मंडल हर्म्य शिखर कलश इन्द्र व यक्ष मूर्ति ध्वजा देवमूर्ति

तपोमूर्ति चरण यंत्र शिलालेख ताम्रपत्र पट्ट रथ पालकी

कृत्रिम पशु पालन चंदोवा वेष्टन उपकरण, आदि।

नक्काशी, पच्चीकारी, सुघड़ता, निर्माण, दृढ़ता, सुन्दरता, भव्यता आदि अनेक दृष्टियोंसे जैन समाजकी ये वस्तुयें अपना सानी नहीं रखतीं और प्राचीन सभ्यताके स्मारक स्वरूप इन वस्तुओंकी गणना संसारकी अलभ्य और अद्वितीय वस्तुओंमें है। इनमेंसे अगणित वस्तुयें अब तक भी भूगर्भमें छिपी हुई हैं जिनका उद्धार अवश्यमेव करना चाहिये। इन वस्तुओंके निर्माणमें जैन समाजकी असंख्य धनराशि लगी है, व अबभी लगती आ रही है। न जाने कितने बंधुओंका इसके निर्माण और रक्षामें समय और शक्तिका ही नहीं किन्तु जीवन तकका बलिदान हुआ है। साहित्य और कलाके आधार पर ही समाजकी संस्कृतिका निर्माण होता है।

(१) नित्य व नैमित्तिक धार्मिक कर्म (२) धार्मिक अनुष्ठान (३) आत्मचिंतन (४) तत्व विचार (५) अहिंसा मय जीवन (६) सत्यता (७) नैतिक दृढ़ता (८) सदसद् विवेक बुद्धि (९) वीरता (१०) शिष्ट सभ्य रहन सहन (११) धर्म प्रभावना (१२ ज्ञान प्रचार (१३) उच्च सहवास (१४) राजनीतिज्ञता (१५) वाणिज्य चतुरता (१६ अधिकार रक्षण (१७) परम्परा पालन, आदि लोकोत्तर गुण साहित्य और कलाकी ही देन हैं। बड़े आश्चर्यकी बात है कि जैन समाजको अभीतक सब स्थानोंके विषयमें इस कलाके प्रतीक मंदिर मूर्ति आदिका सम्पूर्ण परिचय नहीं है। इस परिचयके अभावमें ही आये दिन पवित्र मंदिर, मूर्ति आदिके विषयमें अनेक दुर्घटनायें सुननेमें आती हैं, जब वे किसी अन्य धर्मावलम्बी या सरकारके अधिकारमें चली जाती हैं तब दौड़धूप, मुकद्दमाबाजी, प्रार्थनायें आदिमें बहुत कुछ समय, शक्ति और द्रव्य लग कर भी पूरी सफलता मुश्किलसे मिलती है परिचयके अभावमें ऐतिहासिक प्रमाण उपस्थित करनेमें भी कठिनता आती है। इसलिये साहित्य और कलाकी सभी वस्तुओंका सभी स्थानोंसे पूरा पूरा परिचय प्राप्त करना तत्सम्बन्धी वर्तमान अवस्थाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये प्रथमावश्यक और अनिवार्य है। इसमें किसी दूसरे अभावकी अपेक्षा समाजकी उदासीनता ही देरीके लिये जिम्मेदार है। यदि समाज लगनसे काम ले, व्यवस्थित रीतिसे कार्य सम्पादन करना आरम्भ करे तो बरसोंका काम दिनोंमें पूरा हो सकता है अन्यथा मोटी मोटी रकमें खर्च करके भी दिनोंका काम बरसोंमें पूरा नहीं हो सकेगा जैसा कि आज तक का इतिहास बतलाता है।

बगैर योजनाके, बगैर क्रमिक उन्नतिशील व्यवस्थाके, कोई भी महान कार्य सम्पादित नहीं हो सकता है। कहना नहीं होगा कि हमारी समाजका साहित्य और कलाका क्षेत्र लगभग अखण्ड भारतके क्षेत्र जितना ही विस्तीर्ण है। प्रत्येक स्थानसे इन विषयोंका वास्तविक परिचय प्राप्त करनेका कार्य कहनेमें जितना सरल है, करनेमें उतना सरल नहीं है। परन्तु कार्यकी महानतासे भय खाकर उदासीन और निश्चेष्ट होना कोई बुद्धिमानी नहीं। आज जो रेगिस्तानोंको सरसब्ज किया जा रहा है, दुर्गम पहाड़ और बीहड़ जंगलोंको आवागमन और खेतीके योग्य बनाया जा रहा है, वह क्या कोई साधारण काम है? परन्तु निरन्तरके प्रयास, दृढ़ता, स्वावलंबन सहयोग आदिके सहारे इन महान कार्योंमें सफलता मिलती आ रही है। भारत भरका बालिग मताधिकार निर्वाचन क्षेत्रोंके द्वारा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रदान किया जा चुका है यह देखते हुए यह कार्य कोई कठिन नहीं है यदि सुव्यवस्थित रीतिसे किया जाय।

वह रीति यह है कि प्रथम प्रारम्भिक परिचय प्राप्त कर लिया जाय। प्रारम्भिक परिचय प्राप्त करनेके बाद विस्तृत परिचयके लिये सभी सुविधाओंका मार्ग उन्मुक्त और प्रशस्त हो जायगा।

इस प्रारम्भिक परिचय प्राप्तिका कार्य एक निर्दिष्ट फॉर्म पर होना चाहिये कि जिससे अपने आप इन दोनों विषयकी डिरेक्टरी तैयार हो जाय, आगामी पत्रव्यवहारके लिये सब स्थानोंके नाम पते प्राप्त हो जांय, वीरसेवा मंदिरकी ओरसे प्रचारक भेजकर शास्त्रभंडारोंके निरीक्षणका कार्य प्रारम्भ हुआ है उसके लिये प्रत्येक स्थानका प्रोग्राम पहलेसे ही इस प्रकारका निश्चित कर लिया जाय कि उस दिशामें और उस लाइनमें कोई महत्वका स्थान छूटने न पावे और जिन स्थानोंकी शास्त्र सूची किसी सरस्वती भवनमें या किसी अन्य स्थान पर पहलेसे आई हुई हो तो उसे प्रचारक साथमें लेते जावें कि जिसको मिलान करके पूरी करनेका कार्य सहज और शीघ्र हो जाय।

ये फॉर्म प्रत्येक शास्त्र भंडार और प्रत्येक धर्मस्थानके लिये अलग अलग हों, छोटे आकारके पुष्ठ कागज पर छपाये जावें और Loose leaf फाइलिंगके लिये पहले से ही छेद (Punch) करा दिये जावें। इनमें पूछताछके विषय इस प्रकारके रखे जायें:—

साहित्य सम्बन्धी फार्म—भंडार किसके अधिकार में है? किस स्थान पर है। सुरक्षाकी दृष्टिसे वह स्थान ठीक है या नहीं। हस्तलिखित ग्रन्थोंकी कुल संख्या। ताडपत्रादि ग्रन्थोंकी संख्या। वर्षमें १, २ बार वेष्टन खोल कर ग्रन्थ देखे जाते हैं या नहीं। ग्रन्थोंकी सूची तैयार है या नहीं। अतिशय प्राचीन ग्रन्थोंका नाम व संख्या। मरम्मत योग्य ग्रन्थोंका नाम व संख्या। ग्रंथोंके देन लेनका लेखा रखा जाता है या नहीं। भंडारके कार्यकर्ताका नाम व पता वहाँकी जनता किस विषयोंके ग्रन्थोंका पठन पाठन करती है और किस विषयके ग्रन्थोंका वहाँ उपयोग नहीं हो रहा है। किन विषयोंके या कौन कौन ग्रन्थ मंगवाने की वहाँ आवश्यकता है। आदि।

धर्मस्थान सम्बन्धी फार्म:—मन्दिर या धर्मस्थान किस पंचायत या व्यक्तिके अधिकारमें है। किस स्थान पर है। मंदिरमें मूर्तियोंकी संख्या, प्राचीन मूर्तियोंकी संख्या और उन पर अंकित हो तो सम्वत्। प्राचीन यन्त्र और शिलालेखादि पुरातत्व सामग्रीका संक्षिप्त परिचय। मंदिरकी वार्षिक स्थायी आय और खर्चके अंक। मन्दिर सम्बन्धी स्थायी जायदादका संक्षिप्त परिचय। मन्दिरकी अस्थायी सम्पत्तिका अनुमानिक मूल्यांकन। पूजन प्रक्षाल नियमित रूपसे करने वालोंकी संख्या। मन्दिर सम्बन्धी पंचायतीकी घर संख्या व जन संख्या। पंचायती मुखिया या कार्यकर्ताका नाम व पता। जीर्णोद्धार आदिकी आवश्यकता क्या है और उसमें कितना व्यय होनेका अनुमान है। आदि। पुरातत्व सम्बन्धी संस्थाओं तीर्थक्षेत्र कमेटियों और सरस्वती भवनोंके अतिरिक्त अन्य सदाशयी महानुभावोंको भी उपरोक्त दोनों फार्मोंका ढाँचा विचार पूर्वक निश्चित कर लेना चाहिये और फार्म छपवाकर उसकी खानापूर्तिके लिए यह कार्य व्यवस्थित रूपमें तत्काल चालू होकर शीघ्रतया सम्पादित हो जाना चाहिए।

हालकी मर्दुमशुमारीके विस्तृत आंकड़े प्रकाशित होने पर इस अनुमानकी पुष्टि ही होगी कि छोटे गाँवकी जनता बड़े गाँव और नगरोंकी ओर आकृष्ट होती आ रही है जिसके कारण छोटे गाँवोंकी आबादीमें इतनी तेजीसे कमी हो रही है कि वहाँके मन्दिरों व अन्य सार्वजनिक स्थानोंके साथ वहांके शास्त्रभंडारोंकी दशा भी चिन्तनीय हो उठी है। धर्मादेके द्रव्य और धर्मादा जायदादके विषयमें राजनीतिक हलचलसे समाज परिचित है। पंचवर्षीय योजनामें आर्थिक समस्या सुलझानेके लिए धर्मादेकी सम्पत्ति प्राप्त करनेका प्रस्ताव नेताओं द्वारा रखा जा चुका है। देखभाल और जीर्णोद्धार आदिकी त्रुटिके कारण उनके महत्वपूर्ण स्थानों पर सरकारके पुरातत्व विभागने कब्जा कर लिया है। प्रमाणाभावमें अनेक अनिष्ट घटनायें अब तक मंदिरों, तीर्थक्षेत्रों आदिके सम्बन्धमें घटित हो चुकी हैं अतएव मात्र साहित्य, कला और पुरातत्वकी दृष्टि से ही नहीं किन्तु आर्थिक दृष्टि व अन्य बहुसंख्यक कारणों से भी वर्तमानमें यह अत्यन्त आवश्यक है कि सब स्थानोंसे प्रस्तावित फार्म भरकर आ जावें और उनसे बिना किसी अतिरिक्त श्रमके डायरेक्टरी तैयार होकर भविष्यके लिये भलीभाँति सोच समझकर रक्षात्मक व्यवस्थाकी जाय।

किसी अनिष्ट घटनाके पश्चात् की गई प्रार्थना, मुकदमेबाजी और पश्चातापकी अपेक्षा वर्तमान परिस्थितका समुचित ज्ञान प्राप्त कर संभावित अनिष्टसे बचनेका प्रयत्न करना विशेष प्रयोजनीय है।

आशा है कि समाज इस प्राथमिक आवश्यकताके प्रति उदासीन न रहकर कार्यक्षेत्रमें अग्रसर होगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारी तीर्थयात्राके संस्मरण

(गत किरण १ से आगे)

सोनिजी का परिवार एक धार्मिक परिवार है उन्होंने समय समय पर अपनी कमाईका सदुपयोग किया है विद्वानोंका समादर करते हैं संयम और त्याग मार्गका अनुसरण करते रहते हैं। सोनिजी स्वयं एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं। और गृहस्थोचित षट्कर्मोंका यथेष्टरीत्या पालन करते हैं।

२ नसिया गोधाजीकी, ३ नसिया बड़ा धड़ाकी, ४ नसिया छोटा धड़ाकी, ५ नसिया नया धड़ाकी। इन पांचों नसियोंमें दो व्यक्तिगतहैं और तीन नसिया तीन विभिन्न धड़ोंकी हैं जो उनके नामोंसे प्रसिद्ध हैं। जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अजमेरके जैनियोंमें किसी समय फिरकावन्दी रही है। ६ शान्तिपुरा मन्दिरजी, दौलतबागसे क्रश्चियन गंजमें है। ये सब धार्मिक स्थान सेठजीकी धर्मशालाओं से दो फर्लांगकी दूरी पर हैं। धर्मशाला मुहल्ला सरावगी ३ फल गकी दूरी पर है, और शान्तिपुराका वह मन्दिर इन धर्मशालाओंसे डेढ़ मील दूर है। ७ तेरहपंथी बड़ा मंदिर जी, सरावगी मुहल्लेमें, खजांचीकी गलीमें है सेठजीका नया चैत्यालय—मन्दिरके सामने।

८ चैत्यालय पिंडरियोंका, १० मन्दिरजी नयाधड़ा, ११ मन्दिर गोधाजीका, १२ पद्मावती मन्दिर, १३ बड़ा मन्दिरजी, १४ छोटा धड़ा मन्दिरजी सरावगी मुहल्लेमें घीपड़ीकी ओर जाते हुये सामने। १५ गोधा गुवाड़ी मन्दिर लाल बाजारमें है, जिसमें सरावगी मुहल्लेसे अजमेरी धड़ागलीमें होकर जाना होता है दो फर्लांगकी दूरी पर अवस्थित है। १६ उतार घसेटी मन्दिरजी, १७ डिग्गीका मन्दिर, इसमें उक्त घसेटी मुहल्ले से जाना होता है।

केसरगंज—धर्मशालासे ४-५ फर्लांगकी दूरी पर स्टेशन रोड पर मटिन्डल पुलके सामने गलीमें अवस्थित है। १८ पल्ली वालोंका मन्दिर केसरगंजके मंदिरके समीप तीनमंजिले मकान पर स्थित है।

वीरसेवामन्दिरके अधिष्ठाता आचार्य जुगलकिशोरजी से स्थानीय प्रायः सभी सज्जन मिलनेके लिए आए। यहाँ प्रमुख कार्यकर्ता हीराचन्द्रजी बोहरा सेठ सा० के सेक्रेटरी हैं। यहांके युवकोंकी रणासे मुख्तार साहब को मुझे और पं० बाबूलालजी जमादार को ठहरना पड़ा।

शामको चार बजेके करीब हम लोग किरायेकी एक टैक्सीमें यहाँसे हिन्दुओंके तीर्थस्थान पुष्कर देखने गए जो अजमेरसे ७ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। रास्ता पहाड़ी और सावधानीसे चलनेका है; चलते समय दृश्य बड़ा ही सुहावना प्रतीत होता है। जहाँ ब्रह्माजीका मंदिर सुन्दर है। वहां भगवान महावीर स्वामीकी विशाल मूर्तिका दर्शनकर चित्तमें बड़ी प्रसन्नता हुई। पुष्करमें सन् १६२० में मस्तक रहित एक दिगम्बर जैन मूर्तिका अवशेष मिला था जिसके लेखसे स्पष्ट है कि वह सं० ११६५ में आचार्य गोतानन्दीके शिष्य पंडित गुणचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित हुई थी। ❀ कार्तिकके महीनेमें यहाँ मेला भरता है। पुष्करकी सीमाके भीतर कोई जीव हिंसा नहीं कर सकता। पुष्करसे वापिस आकर हम लोगोंने हीराचन्द्रजी बोहराके यहाँ भोजन किया। रात्रिको सेठजीकी नसियांमें सेठ भागचंद्रजी की अध्यक्षतामें एक सभा हुई जिसमें मुख्तार साहब बाबूलाल जमादार और मेरा भाषण हुआ। इसके बाद केशरगंज होते हुए हमलोग कार द्वारा रातको १ बजे ब्यावर पहुँचे।

ब्यावरमें हम लोग ला० बसन्तलालजीके मकानमें ठहरे, उन्होंने पहलेसे ही हम लोगोंके ठहरनेकी व्यवस्था कर रक्खी थी। ला० बसन्तलालजी ला० फिरोजीलालजी और लाला राजकृष्णजीके देहली भतीजे हैं। वे बड़े ही मिलनसार और सज्जन हैं। उन्होंने सबका आतिथ्य किया और भोजनादिकी सब व्यवस्था की। ब्यावरका स्थान आब हवाकी दृष्टिसे अच्छा है। परन्तु गर्मीके दिनोंमें यहां पानीकी दिक्कत रहती है। नशियांजीके शान्त वातावरणमें व्रती त्यागियोंके ठहरनेका अच्छा सुभीता है। प्रातःकाल होते ही नैमित्तिक क्रियाओंसे निवृत होकर स्वर्गीय सेठ चम्पालालजी रानी वालोंकी नशियांजीमें दर्शन किये, और

❀ संवत् ११६५ आगण (अगहन) सुदी ३ आचार्य गोतानन्दी शिष्य पंडित गुणचन्द्रेण शान्तिनाथ प्रतिमा कारिता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहीं ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवनको देखा। पं पन्नालालजी सोनी उसके सुयोग्य व्यवस्थापक हैं। उन्होंने भवनकी सब व्यवस्थासे अवगत कराया। चूँकि यहांसे जल्दी ही उदयपुरको प्रस्थान करना था, इसीसे समयकी कमीके कारण भवनके जिन हस्तलिखित ग्रन्थोंको देख कर नोट लेना चाहते थे वह कार्य शीघ्रतामें सम्पन्न नहीं हो सका। ब्यावरसे हम लोग ठीक ६ बजे सवेरेसे १३० मीलका पहाड़ी रास्ता तय कर रात्रिको १०॥ बजेके करीब उदयपुर पहुँचे। रास्तेमें हिन्दुओंके प्रसिद्ध तीर्थ नाथद्वारेको भी देखा और शामका वहीं भोजनादि कर सड़कके पहाड़ी विषम रास्तेको तय कर, तथा प्राकृतिक दृश्योंका अवलोकन करते हुए उदयपुरके प्रसिद्ध 'फतेसिंह मेमोरियल' में ठहरे। यह स्थान बड़ा सुन्दर और साफ रहता है, सभी शिक्षित और श्रीमानोंके ठहरनेकी इसमें व्यवस्था है। मैनेजर योग्य आदमी हैं। यद्यपि यहाँ ठहरनेका विचार नहीं था, परन्तु मोटरके कुछ खराब हो जानेके कारण ठहरना पड़ा।

उदयपुर एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है। राजपूताने (राजस्थान) में उसकी अधिक प्रसिद्धि रही है। उदयपुर राज्यका प्राचीन नाम 'शिविदेश' था, जिसकी राजधानी महिमा या मध्यमिका नगरी थी, जिसके खण्डहर इस समय उक्त नगरीके नामसे प्रसिद्ध हैं और जो चित्तौड़से ७ मील उत्तरमें अवस्थित हैं ❀। उदयपुर मेवाड़का ही भूषण नहीं है किन्तु भारतीय गौरवका प्रतीक है। यह राजपूतानेकी वह वीर भूमि है जिसमें भारतकी दासता अथवा गुलामीको कोई स्थान नहीं है। महाराणा प्रतापने मुसलमानोंकी दासता स्वीकार न कर अपनी आनकी रक्षामें सर्वस्व अर्पण कर दिया, और अनेक विपत्तियोंका सामना करके भारतीय गौरवको अक्षुण्ण बनाये रखनेका प्रयत्न किया है। उदयपुरको महाराणा उदयसिंहने सन् १५५६ में बसाया था, जब मुगल सम्राट् अकबरने चित्तौड़गढ़ फतह किया। उस समय उदयसिंहने अपनी रक्षाके निमित्त इस नगरको बसानेका यत्न किया था। उदयपुर स्टेटमें जैन पुरातत्त्वकी कमी नहीं है। उदयपुर और आसपासके स्थानोंमें, तथा भूगर्भमें कितनी ही महत्वकी पुरातन सामग्री दबी पड़ी है। विजोलियाका पार्श्वनाथका दिगम्बर जैन मन्दिर, चित्रकूटका जैन कीर्तिस्तम्भ, और चित्तौड़के पुरातन मन्दिर एवं मूर्तियाँ, और भट्टारकीय गद्दीका इतिवृत्त इस समय सामने नहीं है। धुलेव (केशरिया जी) का आदिनाथका पुरातन दि० जैन मन्दिर जैनधर्मकी उज्वल कीर्तिके पुंज हैं, परन्तु यह सब उपलब्ध पुरातन सामग्री विक्रमकी १० वीं शताब्दीके बादकी देन है।

उदयपुरमें इस समय ८ शिखरबन्द मन्दिर और ५ चैत्यालय हैं। हम सब लोगोंने सानन्द बन्दना की। उदयपुरके पार्श्वनाथके एक मन्दिरमें मूलनायककी मूर्ति सुमतिनाथकी है, किन्तु उसके पीछे भगवान पार्श्वनाथकी सं० १५४८ वैशाख सुदी १३ को भट्टारक जिनचन्द द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति भी विराजमान है। समय कम होनेसे मूर्तिलेख नहीं लिये जा सके, पर वहाँ १२ वीं १३ वीं शताब्दीकी भी मूर्तियाँ विराजमान हैं। बसवा निवासी आनन्दरामके पुत्र पं० दौलतरामजी काशलीवाल, जो जयपुरके राजा जयसिंहके मन्त्री थे वहाँ कई वर्ष रहे हैं और वहाँ रह कर उन्होंने जैनधर्मका प्रचार किया, वसुनन्दि श्रावकाचारकी सं० १८०८ में टब्बा टीका वहांके सेठ वेलजीके अनुरोधसे बनाई। इतना ही नहीं, किन्तु, संवत् १७९५ में क्रियाकोषकी रचना की। और संवत् १७९८ में अध्यात्म बारहखड़ी बना कर समाप्त की ×। इस ग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिमें वहांके अनेक साधर्मी सज्जनोंका नामोल्लेख किया गया है जिनकी प्रेरणासे उक्त ग्रन्थकी रचना की गई है ❀ उनके नाम इस प्रकार हैं— पृथ्वीराज, चतुर्भुज, मनोहरदास, हरिदास, वखतावरदास, कर्णदास और पण्डित चीमा।

❀ देखो, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २ पृ० २२७

× संवत् सत्रहसौ अट्ठाणव, फागुन मास प्रसिद्धा।
शुकलपक्ष पक्ष दुतिया उजयारा, भायो जगपति सिद्धा ॥३०
जबै उत्तरा भाद्र नखत्ता, शुकल जोग शुभ कारी।
बालव नाम करण तब वरतै, गायो ज्ञान विहारी ॥ ३१
एक महूरत दिन जब चढ़ियो, मीन लगन तब सिद्धा।
भगतिमाल त्रिभुवन राजाकौं, भेंट करी परसिद्धा ॥ ३२
❀ उदियापुरमें रुचिधरा, कैयक जीव सुजीव।
पृथ्वीराज चतुर्भुजा, श्रद्धा धरहिं अतीव ॥ ५
दास मनोहर अर हरी, द्वै वखतावर कर्ण।
केवल केवल रूपकों, राखैं एकहि सर्ण ॥ ६
चीमा पंडित आदि ले, मनमें धरिउ विचार।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं, शास्त्रभण्डार भी अच्छा है। संवत् १७०१ और १७०२ में भट्टारक सकलकीर्तिके कनिष्ट भ्राता ब्रह्मजिनदासके हरिवंशपुराणकी प्रतिलिपि की गई, तथा सं० १७६८ में त्रिलोक दर्पण' नामका ग्रन्थ लिखा गया है। ज्ञान भण्डारमें अनेक ग्रन्थ इससे भी पूर्वके लिखे हुये हैं, परन्तु अवकाशाभावसे उनका अवलोकन नहीं किया जा सका। मन्दिरोंके दर्शन करनेके बाद हम सब लोग उदयपुरके राजमहल देखने गए और महाराणा भूपालसिंहजीसे दीवान खासआममें मिले। महाराणाने बाहुबलीको परोक्ष नमस्कार किया। उदयसागर भी देखा, यहाँ एक जैन विद्यालय है, ब्र० चाँदमलजी उसके प्राण हैं। उनके वहाँ न होने से मिलना नहीं हो सका। विद्यालयके प्रधानाध्यापकजीने २ छात्र दिये. जिससे हम लोगोंको मन्दिरोंके दर्शन करने में सुविधा रही, इसके लिए हम उनके आभारी हैं। उदयपुरसे हम लोग ३॥ बजेके करीब ४० मील चलकर ६॥ बजे केशरियाजी पहुँचे। मार्गमें भीलोंकी ६ चौकियाँ पड़ी, उन्हें एक आना सवारीके हिसाबसे टैक्स दिया गया। यह भील अपने उस एरियामें यात्रियोंके जानमालके रक्षक होते हैं। यदि कोई दुर्घटना हो जाय तो उसका सब भार उन्हीं लोगों पर रहता है। साधु त्यागियोंसे वे कोई टैक्स नहीं लेते। यह लोग बड़े ईमानदार जान पड़ते थे।

केशरिया अतिशयक्षेत्रके दर्शनोंकी बहुत दिनों से अभिलाषा थी. क्योंकि इस अतिशय क्षेत्रकी प्रसिद्धि एवं महत्ता दि० जैन महावीर अतिशय क्षेत्रके समान ही लोकमें विश्रुत है। यह भगवान आदिनाथका मन्दिर है, इस मन्दिरमें केशर अधिक चढ़ाई जाती है यहां तक कि बच्चोंके तोलकी केशर चढ़ाने और बोलकबूल करनेका रिवाज प्रचलित है इसीसे इसका नाम केशरियाजी या केशरियानाथ प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है। यह मन्दिर मूलतः दिगम्बर सम्प्रदायका है, कब बना यह अभी अज्ञात है, परन्तु खेला मण्डपमें लगे हुए शिलालेखसे सिर्फ इतना ही ध्वनित होता है कि इस मन्दिरका संवत् १४३१में वैशाख सुदि ३ अक्षय तृतीया बुधवारके दिन खडवाला नगरमें बागड़ प्रान्तमें स्थित काष्ठासंघके भट्टारक धर्मकीर्तिगुरुके उपदेशसे शाह बीजाके पुत्र हरदातकी पत्नी हारू और उसकेपुत्रों—पुंजा और कोता द्वारा—आदिनाथके इस मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया गया था*। प्रस्तुत धर्मकीर्ति काष्ठासंघ और लाल बागड़ संघके भट्टारक त्रिभुवनकीर्तिके शिष्य और भ० पद्मसेनके प्रशिष्य थे भ० धर्मकीर्तिके शिष्य मलयकीर्तिने संवत् १४६३में भ०सकलकीर्तिके मूलाचारप्रदीपकी प्रशस्ति लिखी थी। इस मन्दिरमें विराजमान भगवान आदिनाथकी यह सातिशय मूर्ति बड़ौदा बटपद्रक के दिगम्बर जैनमन्दिर से लाकर विराजमान की गई है। मूर्ति कलापूर्ण और काले पाषाणकी है वह अपनी अक्षुण्य शान्तिके द्वारा जगतके जीवोंकी अशान्तिको दूर करनेमें समर्थ है। मूर्ति मनोज्ञ और स्थापत्यकलाकी दृष्टिसे भी महत्वपूर्ण है। ऐसी कलापूर्ण मूर्तियाँ कम ही पाई जाती हैं। खेद इस बातका है कि जैन दर्शनार्थी उनके दर्शन करनेके लिये चातककी भांति तरसता रहता है पर उसे समय पर मूर्तिका दर्शन नहीं मिल पाता। केवल सुबह ७ बजे से ८ बजे तक दिगम्बर जैनोंको १ घंटेके लिये दर्शन पूजनकी सुविधा मिलती हैं। शेष समयमें वह मूर्ति श्वेताम्बर तथा सारे दिन व रातमें हिन्दुधर्मकी बनाकर पूजी जाती है और

बारहखड़ी हो भक्तिमय, ज्ञानरूप अविकार ॥ ७
भाषा छन्दनि मांहि जो, अक्षर मात्रा लेय।
प्रभुके नाम बखानिये, समुझै बहुत सुनेय ॥ ८
यह विचारकर सब जना, उर धर प्रभुकी भक्ति।
बोले दौलतरामसौं, करि सनेह रस व्यक्ति ॥ ६
बारहखड़ी करिये भया, भक्ति प्ररूप अनूप।
अध्यातमरसकी भरी, चर्चारूप सुरूप ॥ १०

*१ ·····[येन स्वयं बोध मयेन]
२ लोका आश्वासिता केचन वित्त कार्ये [प्रबोधिता केच--]
३ न मोक्षमा ग्रे (गें तमादिनाथं प्रणामामि नि [त्यम] [श्री विक्र—]
४ दित्य संवत् १४३१ वर्षे वैशाख सुदि अक्षय [तृतिया]
५ तिथौ बुध दिना गुरुवद्यो हा वापी कूप प्र···
६ सरि सरोवरालंकृति खडवाला पत्तने। राजश्री · ···
७ विजयराज्य पालयंति सति उदयराज सेल पा·····
८ श्री मज्जिनेकाय धन तत्पर पंचूली बागड प्रतिपात्राश्री
९ [का] ष्ठा संघे भट्टारक श्री धर्मकीर्ति गुरोपदेशेना वा
१० ये साध रहा बीजासुत हरदात भार्या हारू तदपत्योः
११ पुंजा कोताभ्यां श्री [ना] मे (मे) श्वर प्रासादस्य जीर्णोद्धार [कृतं]
१२ श्री नाभिराज वरवंसकृता वतरि कल्पद्रु·····
१३ महासेवनेसुः यस्भिन सुरप्रगणाः कि
१४ ·····भोज स यूगादि जिनश्वरोवः ॥ १ ॥·····
(इस लेखका यह पद्य अशुद्ध एवं स्खलित है)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रातःकाल होते ही उसके सिंदूर आदिको पण्डे बुहारियोंसे साफ करते हैं, यह मूर्तिकी घोर अवज्ञा है साथही उससे मूर्तिके कितने ही अवयवोंके घिस जानेका भी डर है। मन्दिरमें यह दि०मूर्ति जब अपने स्वकीय दि०रूपमें आई तो उसी समय सब लोगोंके हृदय भक्तिभावसे भर गए, और मूर्तिको निर्निमेष दृष्टिसे देखने लगे। मन्दिर भगवान आदिनाथकी जय ध्वनिसे गूंज उठा, उस समय जो आनन्दातिरेक हुआ वह कल्पनाका विषय नहीं है। मन्दिरके चारों तरफ दिगम्बर मूर्तियां विराजमान हैं। मन्दिर बड़ा ही कलापूर्ण है। आजके समयमें ऐसे मन्दिरका निर्माण होना कठिन है।

मन्दिर का सभी मंडप और नौचौकी सं० १५७२ में काष्ठा संघके अनुयायी काछलू गोत्रीय कड़िया पोहया और उसकी पत्नी भरमीके पुत्र हांसाने धुलेवमें ऋषवदेवको प्रणामकर भ०यशः कीर्तिके समय बनवाया। इससे स्पष्ट है कि मन्दिरका गर्भगृह निज मन्दिर उसके आगेका खेला मंडप तथा एक अन्य मंडप १४३१ और १५७२ में बनें। अन्यदेव कुलकाएं पीछे बनी हैं। जैन होते हुए भी वहां सारे दिन हिन्दुत्वका ही प्रदर्शन रहता है। यद्यपि मूर्तिकी पूजा करनेका हम विरोध नहीं करते, उस प्रान्तके प्रायःसभी लोग पूजन करते हैं। और उन पर श्रद्धा रखते हैं परन्तु उसके प्राकृतिक स्वरूपको छोड़कर अन्य अप्राकृतिक रूपोंको बनाकर उसकी पूजा करना कोई श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता। यहां इस बातका उल्लेख कर देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि श्रीचन्दनलालजी नागौरीने 'केसरियाजी का जो इतिहास' लिखा है और जिसके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। उसमें साम्प्रदायिक व्यामोहवश कितनी ही काल्पनिक बातें, पट्टे एवं शिलालेख दिये हैं जो जाली हैं और जिनकी भाषा उस समयके पट्टे परवानोंसे जरा भी मेल नहीं खाती। उसमें कुछ ऐसी कल्पनाएं भी की गई हैं जो ग़लत फहमीको फैलाने वाली हैं जैसे मरुदेवीके पास सिद्धिचन्द्रके चरण चिन्होंको, तथा सं० १६८८ के लेखका बतलाया जाना जबकि वहां हाथीके होदेपर वि० सं० १७११ का दिगम्बर सम्प्रदायका लेख* है और भी अनेक बातें हैं जिन पर फिर कभी प्रकाश डाला जावेगा। नागौरीजीकी कल्पनाओंका खण्डन श्री लक्ष्मीसहाय माथुर विशारद ने किया है। पाठक उसे अवश्य पढ़ें। राजस्थान इतिहासके प्रसिद्ध विद्वान महामना स्वर्गीय गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा भी अपने राजपूतानेके इतिहासमें इस मन्दिरको दिगम्बरोंका बतलाते हैं और शिलालेखोंसे यह बात स्वतः सिद्ध है। फिरभी श्वेतांबर समाज इसे बलात् अपने अधिकारमें लेना चाहती है यह नैतिक पतनकी पराकाष्ठा है

श्वेताम्बर समाजने इसी तरह कितने ही दिगम्बर तीर्थ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया, यह बात उसके लिये शोभनीक नहीं कही जा सकती।

पिछले ध्वजादण्डके समय साम्प्रदायिकताके नंगे नाचने कितना अनर्थ ढाया, यह कल्पना की वस्तु नहीं, यहाँ तक कि कई दिगम्बरियोंको अपनी बली चढ़ानी पड़ी। और अब मूर्तियां व लेख तोड़े गए. जिसके सम्बन्धमें राजस्थान सरकारसे जांच करनेकी प्राथना की गई। अस्तु।

भगवान महावीरके अनुयायियोंमें यह कैसा दुर्भाव, जो दूसरेकी वस्तुको बलात् अपना बनानेका प्रयत्न किया जाता है। ऐसी विषमतामें एकता और प्रेमका अभि संचार कैसे हो जा सकता है? दिगम्बर श्वेताम्बर समाजका कर्तव्य है कि वे दोनों समयकी गतिको पहचानें, और अपनी साम्पदायिक मनोवृत्तिको दूर रखते हुए परस्परमें एकता और प्रेमकी अभिवृद्धि करनेका प्रयत्न करें। एक ही धर्मके अनुयायियोंकी यह विषमता अधिक खटकती है। आशा हैं उभय समाजके नेतागण इस पर विचार करेंगे।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि केशरियाजीका मन्दिर दि० सम्प्रदायका है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता। परन्तु वहां जैन संस्कृतिके विरुद्ध जो कुछ हो रहा है उसे देखते हुए दुःख और आश्चर्य जरूर होता है। मन्दिरका समस्त वातावरण हिन्दुधर्मकी क्रियाओंसे ओत-प्रोत है। अशिक्षित पण्डे वहां पर पुजारी हैं, वे ही वहांका चढ़ावा लेते हैं। आशा है उभय समाज अपने प्रयत्न द्वारा अपने अधिकारोंका यथेष्ट संरक्षण करते हुए मन्दिरका असली रूप अव्यक्त न होने देंगे। क्रमशः—

—परमानन्द जैन,

* संवत् १७११ वर्षे वैशाखसुदि ३ सोमे श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छे बलात्कार गणे श्रीभट्टारक·····मूललेख से।
(यह लेख मरुदेवीके हाथी पर बाईं ओर है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भारत देश योगियोंका देश है

(ले०—बा० जयभगवान जी एडवोकेट)

(गत किरणसे आगे)

भारतीय योगियोंके अनेक संघ और सम्प्रदाय

इन इतिवृत्तोंसे पता लगता है, कि यह श्रमणगण प्राचीनतम समयसे काल, क्षेत्रकी विभिन्न २ परिस्थितिसे उत्पन्न होने वाले तत्त्वज्ञान व आचार व्यवहार सम्बन्धी भेद-प्रभेदोंके कारण—अनेक संघ और सम्प्रदायोंमें बटे हुए थे। इन्हींमें शैव, पाशुपत और जैन श्रमण भी शामिल थे। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि महावीरकालमें थोड़े थोड़े से तत्त्व और आचार सम्बन्धी भेदोंके कारण श्रमणसंघ कई भेदोंमें बटा हुआ था—पारसनाथ सन्तानीय साधुओंका हृषिकेश सम्प्रदाय वाला सचेलकसंघ, मस्करी गोशालक वाला आजीवक संघ जामालि वाला बहुरतसंघ, अपने-को तीर्थङ्कर कहने वाले सञ्जय, अजितकेश कम्बली, प्रकुद्ध कात्यायन. पूर्ण कश्यप आदि आचार्योंके श्रमण संघ भगवान बुद्धका बौद्धसंघ। महावीर उपरान्त कालमें स्वयं उन द्वारा स्थापित संघभी दिगम्बर श्वेताम्बर संघोंमें और उसके पीछे ये संघभी गोपिच्छक, काष्ठा, द्राविड़, यापनीय, माथुर आदि पचासों उत्तर गण गच्छोंमें विभक्त हो गया था। ऐसी दशामें भारतकी विशालता और समयकी प्राचीनताको देखते हुये महावीर पूर्व कालीन भारतमें अनेक प्रकारके श्रमणसंघोंका रहना स्वाभाविक ही है, परन्तु आज इन सब संघोंके इतिहास और दार्शनिक सिद्धान्तोंका पता लगाना बहुत कठिन है।

इस सम्बन्धमें जो जैन अनुश्रुति हम तक पहुँची है उससे तो ऐसा ज्ञात होता है कि इस युगके आदि धर्म-प्रवर्तक ऋषभ भगवानके जमानेमें ही बहुतसे श्रमण जिन्होंने उनके पास जाकर दीक्षा ली थी, इन्द्रिय संयम व्रत उपवास तपस्या और परिषहजयके कठोर नियमोंसे घबराकर शिथिलाचारी हो गये। इन्होंने भगवान् ऋषभ-के मार्गको छोड़कर अपने स्वतन्त्र योग साधनाके सम्प्रदाय स्थापितकर लिये। इनमेंसे कितनोंने दिगम्बरत्वको भी छोड़ दिया, किसीने अपनी नग्नताको छुपानेके लिए पेड़ोंकी छाल धारण करली, किसीने मृगछाल ढकली, किसीने भस्मसे ही शरीरका विलेपन कर लिया किसीने कौपीन पहिन ली और किसीने दण्ड धारण कर लिया। ये लोग वनमें ही छोटे छोटे पत्तोंके झोंपड़े बनाकर रहने लगे और वनमें उत्पन्न होने वाले फलफूल, कन्दमूल आदि लाकर जीवनका निर्वाह करने लगे। इन विचलित साधुओंमें मारीच ऋषि भी शामिल था जो जैनअनुश्रुति अनुसार स्वयं भगवान ऋषभका पौत्र था। इस अनुश्रुतिका पूरा विवरण जैन पौराणिक साहित्यमें मौजूद है१।

पीछेसे बढ़ते बढ़ते यह सम्प्रदाय भगवान महावीर काल में ३६३ की संख्या तक पहुंच गये इस गणनामें पाशुपत, शैव, शाक्त, तापस चार्वाक, बौद्ध, आजीवक, अवधूत तथा कपिल पातञ्जल, बादरायण जैमिनी कणाद, गौतम आदि भारतीय षड् दर्शनकार भी शामिल हैं। जैन शास्त्रकारोंने इन विभिन्न मतोंकी तात्त्विक मान्यताओंका उल्लेख करते हुए इन्हें चार मुख्य श्रेणियोंमें विभक्त किया है—क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी २। बौद्धमतके पिटक ग्रन्थोंमें भी इन विभिन्न धर्मोंकी मान्यताओंका उल्लेख मिलता है❀ वैदिक साहित्य-में भी इन विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तोंके अंकुर मौजूद हैं × इन सभी दार्शनिकोंका ज्ञातव्य विषय आत्मा व ब्रह्म था। इन सभीकी समस्या यह थी कि इस आत्माका

---

१. (अ) आदि पुराण १८–१–६१. (ईसाकी ८वीं सदी)
(आ हरिवंश पुराण ६. १००-११४. ,, ,, ,,
(इ) पद्मचरित ३. २८६–३०५. (ईसाकी ७वीं सदी)

२ (अ) षट् खण्डागम-धवला टीका–पुस्तक १–अमरावती, १७३६. १०७–१११. (ईसाकी ८वीं सदीके प्रारम्भमें धवला टीका लिखा गया)
(आ) भावप्राभृत–१३५, (१४० ईसाकी पहिली सदी)
(इ) गोम्मटसार–कर्मकाण्ड ८७६–८७५.
(ईसाकी नवीं सदी)

❀ (अ) सुत्त पिटक–दीर्घनिकाय ब्रह्मजाल सुत्त, पहला, दूसरा तीसरा, चौथा और ७६ वां सुत्त.
(आ) मज्झिम निकाय ३० वां, ५६ वां और ७६वां सुत्त।

× श्वे० उप० १-१-४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल कारण क्या है—हम कहाँ से पैदा होते हैं, किसके सहारे जीते हैं। हमारा संचालन कौन करता है। कौन हमारे सुख दुःखोंकी व्यवस्था करता है।

इन अनेक प्रकारके दार्शनिक योगियोंका बाह्यरूप विभिन्न परिस्थिति और प्रभावोंके कारण कुछ भी रहा हो, परन्तु यह निर्विवाद है कि इन सबकी आत्मा एक ही थी जो श्रमणसंस्कृतिसे ओत-प्रोत थी। यह सभी श्रमण प्रायः अध्यात्मवादी थे। ये अपने त्यागबल, तपोबल, ज्ञानबल और आचारबलके कारण सभी भारतीय जनता द्वारा विनय और पूजाके योग्य माने जाते थे और तो और देवलोग भी सदा उन जैसा ही बननेकी उत्कृट अभिलाषा रखते थे†।

इस प्रकारके परिव्राजक मुनि इस देशकी स्थायी सम्पत्ति थे। यवन यात्री मैगस्थनीजसे लेकर—जो ई० पूर्वकी चौथी सदीमें यहाँ आया था और जिसने जिम्नो-सोफिस्ट (Gymno Sophist) अर्थात् जैन फिलासफरके नामसे इनको इंगित किया है—जितने भी विदेशी यात्री और अभ्यागत यहाँ आये सभीने इन योगियोंके विशुद्ध और चमत्कारिक जीवन तथा इनके उदार सिद्धान्तोंका उल्लेख किया है‡। आजभी यह देश इस प्रकारके योगियोंसे सर्वथा खाली नहीं है और आजभी अनेक विदेशी उनकी खोजमें यहां आते रहते हैं❀। महर्षि रमन और महर्षि अरविन्दघोष अभी हालमें ही भारतके महायोगी हो गुजरे हैं।

भारतीय योगियोंकी शिक्षाएँ

ये योगिजन गाँव गाँव और नगर नगरमें विचरते हुए जिन शिक्षाओं द्वारा लोक जीवनको उन्नत, स्वतन्त्र, और सुख सम्पन्न बनाते थे, उनका अनुमान निम्न उदाहरणोंसे किया जा सकता है।

जीव अजर अमर है, ज्ञान धन है, आनन्दमय है, अमृत मय है और यह लोक परिवर्तनशील और अवित्य

संसारमें ये चार पदार्थ पाना बहुत दुर्लभ है—

मनुष्य भव, सद्धर्म उपदेश, सद्श्रद्धा और मोक्ष पुरुषार्थ, यह बात सोचकर मनुष्यको चाहिये कि संयमका पालन करे, ताकि वह कर्मोंका नाश कर सिद्ध अवस्थाको पा सके१।

काल बराबर बीत रहा है, शरीर प्रतिक्षण क्षीण हो रहा है इसलिए प्रमादको छोड़ और जाग, यह मत सोच कि जो आज करना है यह कल हो जायगा। चूंकि सांसारिक जीवन अनित्य है न मालूम इसका कब अन्त हो जाय, इसलिए शरीर छिन्न भिन्न होनेसे पहले इसे आत्मसाधना में लगाना चाहिये२।

शरीरसे विदा होनेके दो मार्ग हैं, एक अपनी इच्छाके विरुद्ध और दूसरा अपनी इच्छाके अनुकूल। पहला मार्ग मूढ मनुष्योंका है और इसका बार बार अनुभव करना पड़ता है। दूसरा मार्ग पण्डित लोगोंका है जो शीघ्र ही मृत्युका अन्त कर देता है३।

जो आदमी विषम वासनाओंमें लिप्त हैं, जो वर्तमान जीवनको ही जीवन मानते हैं, जो मोहग्रस्त हुए पाप पुण्य के फलोंको नहीं निहारते जो स्वार्थसिद्धि, विषयपूर्ति, धनोपार्जन, सुख शीलताके लिए हिंसा, अनीति पापका व्यवहार करते हैं, वे मृत्युके समय दुख शोकको प्राप्त होते हैं, उन्हें मृत्यु भयानक दिखाई देती है। वे उससे कांपते हैं। उनकी मृत्यु उनके इच्छाके विरुद्ध है४।

जो आत्मनिष्ठ हैं, आत्म संयमी हैं, प्रमाद रहित हैं, आत्म-साधनामें पुरुषार्थी हैं जो मासके दोनों पक्षोंके पर्व-दिनोंमें प्रोषधोपवास करते हैं, वे मृत्युके समय शोक विषादको प्राप्त नहीं होते, वे उसका स्वागत करते हुए सहर्ष शरीरका त्याग कर देते हैं, यह पण्डित मरण है५।

जब सिंह मृगको आ पकड़ता है तो कोई उसका सहायक नहीं होता, वैसे ही जब मृत्यु अचानक आकर मनुष्यको पकड़ लेती है तब कोई किसीका सहायक नहीं होता। माता, पिता, स्वजन, परिजन, पुत्र कलत्र बन्धुजन सब हाहाकार करते ही रह जाते हैं६।

---

† दश वैकालिक सूत्र १. १.

‡ अरब और भारतके सम्बन्ध, हिन्दुस्तानी ऐकैडमी प्रयाग पृ. १७८—१८८.

❀ डा० पालब्रटन—गुप्त भारतकी खोज, अनुवादक—श्री वेंकटेश्वर शर्मा शास्त्री वि० सम्वत् १९९६.

१. उत्तराध्ययन सूत्र ३. २०
२. " " ४. ६६
३. " " ५. २, ३
४. " " ५. ४, १६
५. " " ५. १७-२२
६. " " १३. २२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रिय सुख नित्य नहीं हैं, वे मनुष्यके पास आते हैं पुण्य व्यतीत होने पर वे उसे छोड़ कर ऐसे चले जाते हैं जैसे पक्षी फल विहीन वृक्षको छोड़ कर चले जाते हैं ये सुख दुखकी खान हैं७।

जो निर्ममत्व हैं वे वायुके समान, पक्षीके समान, अविच्छिन्न गतिसे गमन करते हैं८।

सुखी वही है जो किसी वस्तुको अपनी नहीं समझता, जब किसी वस्तुका हरण व नाश हो जाता है तो वह यह समझकर कि उसकी किसी वस्तुका नाश व हरण नहीं हुआ, सम भाव बना रहता है९।

यदि धन धान्यके ढेर कैलाश पर्वतके समान ऊँचे मिल जावें तो भी तृप्ति नहीं होती, लोभ आकाश समान अनन्त है और धन परमित है, अतः सन्तोष धन ही महान धन है१०।

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता इसीलिए साधु जन कभी किसी प्राणीका घात नहीं करते, प्राणोंका घात महापाप है११।

प्राणियोंका घात चाहे देवी देवताओंके लिये किया जावे, चाहे अतिथि सेवा व गुरु भक्तिके लिये किया जावे चाहे उदरपूर्ति अथवा मनोविनोदके लिये किया जावे उसका फल सदा अशुभ है, इसीलिये हिंसाको पाप और दयाको धर्म माना गया है१२।

धर्मका मूल दया है, दयाका मूल अहिंसा है और अहिंसाका मूल जीवन - साम्यता है, इसलिये जो सभी जीवोंको अपने समान प्रिय समझता है, श्रेय समझता है वही धर्मात्मा है।

समझानेके लिये तो पापको पाँच प्रकारका बतलाया जाता है—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह, परन्तु वास्तवमें ये सब हिंसा रूप ही हैं क्योंकि ये सब आत्माकी साम्यदृष्टि और साम्यवृत्तिका घात करने वाले हैं१३।

मिथ्यात्व, अज्ञान, प्रमाद, कषाय, अविरति, राग-द्वेष, मोह-माया, अहंकार आदि जितने भी विपरीत भाव हैं, वे सभी आत्माके सुख - शान्ति सौन्दर्य रूप स्वभावके घातक हैं। इसलिये ये सभी हिंसा हैं और इनका अभाव अहिंसा है१४।

प्राणियोंका घात होनेसे आत्माका ही घात होता है। आत्मघात हित नहीं है इसलिए बुद्धिमान लोगोंको प्राणियोंका घात नहीं करना चाहिये१५।

भव्यजीवोंको चाहिये कि वह प्रमाद छोड़ कर दूसरे प्राणियोंके साथ बन्धु समान व्यवहार करें१६।

अहिंसा ही जगतकी रक्षा करने वाली माता है। अहिंसा ही आनन्दको बढ़ाने वाली पद्धति है, अहिंसा ही उत्तम गति है, अहिंसा ही सदा रहने वाली लक्ष्मी है१७।

श्रमण संस्कृतिके पर्व और धर्मकी प्रभावना

ये योगीजन प्रत्येक दिन सन्ध्या समय अर्थात्—प्रात-मध्यान्ह और सायंकालमें सामायिक करते थे। प्रत्येक पक्षके पर्वके दिनोंमें अर्थात् पंचमी, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी एवं अमावाश्याको ये पोसह (उपवास) करते थे, तथा ज्ञान व अज्ञान वश किये हुये दोषोंकी निवृत्तिके अर्थ प्रायश्चित करनेके लिये प्रतिक्रमण पाठ अथवा प्रतिमोक्ष पाठ पढ़ते थे और एक स्थानमें एकत्र हो सर्वसाधारणको धर्मोपदेश देते थे। इन पाक्षिकपर्वोंके अतिरिक्त हर साल वर्षाऋतुके चतुर्मासमें अषाढ़ सुदि एकमसे कार्तिक बदी पन्दरस तक साधु सन्तोंके एकजगह ठहरनेके कारण लोगोंमें खूब सत्संग रहता था इन चतुर्मासमें धर्म-साधना प्रोषध-उपवास, वन्दना-स्तवन, प्रतिक्रमणादि धार्मिक साधनायें सविशेष करनेके लिये उपासक जन साधुओंके समागममें एक स्थानमें एकत्र होते थे। इन मेलोंकी एक विशेषता यह होती थी कि इस अवसर पर एकत्रित हुए जन एक दूसरेसे अपने दोषोंकी क्षमा मांगा करते थे। इनके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष एक साम्वत्सरिक सम्मेलन

---

७ उत्तराध्ययन सूत्र १३-१६-३१
८ ,, ,, १९-४९
९ ,, ,, ९-१४
१० ,, ,, ९-४८-४९
११ ,, ,, ६. ६
१२ कार्तिकेयानुप्रेक्षा ॥ ४०५ ॥
१३ आचार्य अमृतचन्द्र-पुरुषार्थसिद्धयुपाय ॥ ४२ ॥
१४ आचार्य अमृतचन्द्र-पुरुषार्थसिद्धयुपाय ॥४४॥
१५ वट्टकेर आचार्य कृत मूलाचार ॥ ९२१ ॥
१६ शुभचन्द्रकृत ज्ञानार्णव ११,
१७ ,, ,, ॥ ३२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी होता था, इस अवसर पर कई देशोंके साधु संघ एक स्थान पर एकत्र होकर प्रतिक्रमणके अतिरिक्त तत्त्व सम्बंधी तथा आचार - विचार-सम्बन्धी तथा लोक कल्याणकी समस्याओं पर विचार किया करते थे १ ।

इस तथ्यकी ओर संकेत करते हुए विनयपिटकमें लिखा है, कि एक समय बुद्ध भगवान राजगृहके गृद्धकूट पर्वत पर रहते थे उस समय दूसरे मतवाले परिव्राजक चतुर्दशी, पूर्णमासी, और अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश किया करते थे । इन अवसरों पर नगर और ग्रामोंके स्त्री पुरुष धर्म सुननेके लिए उनके पास जाया करते थे । जिससे कि वे दूसरे मतवाले परिव्राजकोंके प्रति प्रेम और श्रद्धा करने लग जाते थे और दूसरे मतवाले परिव्राजक अपने लिये अनुयायी पाते थे । यह देख बुद्ध भगवानने भी अपने भिक्षुओंको अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासीको एकत्र होने, धर्मोपदेश देने, उपोसह करने और प्रतिमोक्ष-प्रतिक्रमणपाठ-करनेकी अनुमति दे दी थी १ ।

इन व्रात्य लोगोंकी (व्रतधारी श्रमण लोग) उपर्युक्त जीवनचर्या को ही दृष्टिमें रख कर ब्राह्मण ऋषियोंने अथर्ववेद - व्रात्यकाण्ड १५ सूक्त १६ में व्रात्योंके निम्न सात अपानोंका वर्णन किया है— १. पूर्णमासी, २. अष्टमी, ३. अमावश्या, ४ श्रद्धा, ५. दीक्षा, ६. यज्ञ, ७. दक्षिणा । इस सूक्तमें ऋषिवरको व्रात्योंके उन साधनोंका वर्णन करना अभीष्ट मालूम होता है जिनके द्वारा वे अपने भीतरी दोषोंकी निवृति किया करते थे । इसीलिये ऋषिवरने इन दोष निवृत्तिमूलक साधनोंको सर्वसाधारणकी परिभाषामें 'अपान' संज्ञासे उद्बोधित किया है । आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें 'अपान' का अर्थ है वह गन्दी वायु, जो श्वास आदि द्वारा शरीरसे बाहर आती है । इन सात अपानोंमें पहले तीन अपान कालसूचक हैं और शेष अन्तिम चार अपान चर्या सूचक हैं । इस सूक्त-का बुद्धिगम्य अर्थ यही है कि—पौर्णमासी, अष्टमी और अमावाश्या वाले दिन व्रात्य लोगोंमें पर्व के दिन माने जाते थे और वे इन दिनोंमें श्रद्धा (धर्मोपदेश) दीक्षा (धर्मदीक्षा) यज्ञ (व्रत, उपवास, प्रतिक्रमण वन्दना-स्तवन) और (दक्षिणादान दक्षिणा) द्वारा धर्मकी विशेष साधना कर आत्म शुद्धि किया करते थे। बृह उप १. ५. १४में अमा-वस्याके दिन सब प्रकारका हिंसा कर्म वर्जित बतलाया गया है ।

इसी प्रकार महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १०६ और १०७ में पर्वके दिनोंमें साधुओं व गृहस्थीजन द्वारा किये जाने वाले व्रत उपवासोंकी महिमा भीष्म युधिष्ठिर संवाद द्वारा यों वर्णन की गई है—भीष्म युधिष्ठिरको कहते हैं कि—उपवासोंकी जो विधि मैंने तपस्वी अंगिरासे सुनी है वही मैं तुझे बताता हूँ—जो मनुष्य जितेन्द्रय होकर पंचमी अष्टमी और पूर्णिमाको केवल एक बार भोजन करता है वह क्षमायुक्त, रूपवान और शास्त्रज्ञ हो जाता है । जो मनुष्य अष्टमी और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको उपवास करता है वह निरोग और बलवान होता है । अध्याय १०६ श्लोक १४-२०)

पुनः अध्याय १०६ श्लोक १५ से लेकर श्लोक ३० तक अगहन, पौष, मांघ, फाल्गुन, चैत्र आदि द्वादश महीनों-के क्रमसे उपवासोंका फल वर्णन किया गया है । इन उपर्युक्त उपवासोंसे लोक सुख और स्वर्ग सुख मिलते हैं । पुनः अध्याय १०६ श्लोक ३०से अध्यायके अन्त तक तथा अध्याय १०७ में विविध प्रकारके उपवासोंका फल बतलाते हुए कहा है कि इन उपवासोंको यदि मांस, मदिरा, मधु त्याग कर ब्रह्मचर्य अहिंसा सत्यवादिता और सर्वभूत हितकी भावनासे किया जावे तो मनुष्यको अग्निष्टोम, वाजपेय, अश्वमेध, गोमेध, विश्वजित अति-रात्र, द्वादशार, बहुसुवर्ण, सर्वमेध, देवसत्र, राजसूय

१ व्याख्या प्रज्ञप्ति १२. १. १३. ६ ॥ उत्तराध्ययन सूत्र ५. ६७. २२

अंगपण्णत्ति—प्रकीर्णक श्लोक २८

इन्द्रनन्दी कृत—श्रुतावतार ॥ ८७

जिनसेन कृत—आदिपुराण पर्व ३८ श्लोक २६-३४

त्रिलोकसार—॥ ६७६ ॥

आशाधर कृत—सागार धर्मामृत २. २६

जयसेनकृत—प्रतिष्ठापाठ ॥ ५५-५८ ॥

२. विनय पिटक—उपोसथ स्कन्धक ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोमपदा आदि विविध यज्ञोंके सम्पादन द्वारा जो ऐहिक और स्वर्गिक सुख मिलते हैं, उनसे भी सैकड़ों और हजारों गुण सुख इन उपवासोंके करनेसे मिलता है। जैसे वेदसे श्रेष्ठ कोई शास्त्र नहीं हैं, मातासे श्रेष्ठ कोई गुरु नहीं है, धर्मसे श्रेष्ठ कोई लाभ नहीं है वैसे ही उपवासोंसे श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। उपवासके प्रभावसे ही देवता स्वर्गके अधिकारी हुए हैं और उपवासके प्रभावसे ही ऋषियोंने सिद्धि हासिल की है। महर्षि विश्वामित्रने सहस्र ब्रह्मवर्षों तक एक बार भोजन किया था इसीके प्रभावसे वह ब्राह्मण हुए हैं। महर्षि च्यवन, जमदग्नि, बसिष्ठ गौतम और भृगु इन क्षमाशील महात्माओंने उपवासके ही प्रभावसे स्वर्गलोक प्राप्त किया है। जो मनुष्य दूसरोंको उपवास व्रतकी शिक्षा देता है उसे कभी कोई दुख नहीं मिलता है। हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य अंगिराकी बतलायी हुई इस उपवास विधिको पढ़ता या सुनता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

उपरोक्त पर्वके दिनोंमें व्रत उपवास रखने, दान दीक्षा देने और क्षमा व प्रायश्चित करनेकी प्रथा आजतक भी जैन साधुओं और गृहस्थोंमें तो प्रचलित है ही, परन्तु सर्वसाधारण हिन्दू जनतामें भी किसी न किसी रूपमें जारी है। ये पर्व और इनसे किये जाने वाले धार्मिक अनुष्ठान निस्सन्देह भारतीय संस्कृतिके बहुमूल्य अंग हैं।

उपरोक्त पर्वके दिनोंमें उपोसथ रखनेकी प्रथा प्राचीन बेबीलोनिया (ईराक देशके लोगोंमें भी प्रचलित थी। बाबुलके सम्राट् असुरबनीपाल (६६९ से ६२६ ई० पूर्व) के पुस्तकालयसे एक लेख मिला है, जिसमें लिखा है कि हर चन्द्रमासकी सातवीं, चौदहवीं, इक्कीसवीं और अट्ठाईसवीं तिथियोंके दिन बाबलके लोग सांसारिक कामोंसे हट कर, देव आराधनामें लगे रहते थे। इन दिनोंको वे सब्बतु (Sabbath) दिवस कहते थे। 'सब्बतु का अर्थ बाबली भाषामें हृदयके विश्रामका दिन है।

ईसाई धर्मकी अनुश्रुति अनुसार जो बाईबल-जेनेसिस अध्याय १ में सुरक्षित है, प्रजापति परमेश्वरने अपलोक (संस्तर) की तम अवस्था (अज्ञान दशा) में से छह दिन तक विसृष्टि विज्ञान का उद्धार करके सातवें दिन सब प्रकारके कर्मोंमें विरक्त होकर विश्राम किया था, ईसाई लोग इस सातव दिन (रविवार) को Sabbath दिन मानते हैं और सांसारिक कार्योंसे विरुद्ध होकर धर्म साधना में लगाते हैं। सब्बतु और उपोसथके शब्द साम्य और भावसाम्यको देखकर अनुमानित होता है कि किसी दूर कालमें भारतीय संस्कृतिके ही मध्य ऐशियामें फैलकर वहांके भगवानका उद्धार किया था।

उपसंहार

इस तरह प्राचीन भारतमें ये पर्व (त्यौहार) भोग उपभोगकी वृद्धिके लिए नहीं बल्कि जनताके सदाचार और संयमको उनके ज्ञान और त्याग बलको बढ़ानेके लिये काम आते थे। आत्मज्ञान, अहिंसा संयम, तप, त्याग, मूलक भारतीय संस्कृतिको कायम रखने और देश विदेशोंमें जगह जगह भ्रमण कर उसका प्रसार करनेका एकमात्र श्रेय इन्हीं त्यागी तपस्वी श्रमण लोगोंका है यह उन्हींकी भूत अनुकम्पा, सद्भावना, सहनशीलता, धर्मदेशना और लोक कल्याणार्थ सतत् परिश्रमणका फल है कि भारत इतने राष्ट्र विप्लवोंमेंसे गुजरनेके बाद भी, इतने विजातीय और सांस्कृतिक संघर्षोंके बाद भी, भाषा भूषा, आचार-व्यवहारकी रद्दोबदलके बावजूद भी, अध्यात्मवादी और धर्मपरायण बना हुआ है। ये महात्मा जन ही सदा यहाँ राजशासकोंके भी शासक रहे हैं। समय समय पर धर्म अनुरूप उनके राजकीय कर्त्तव्योंका निर्देश करते रहे हैं। ये सदा उन्हें विमूढता, निष्क्रियता, विषयलालसा और स्वार्थताके अधम मार्गोंसे हटा कर धर्ममार्ग पर लगाते रहे हैं। भारतका कोई सफल राजवंश ऐसा नहीं है जिसके ऊपर किसी महान् योगीका वरद हाथ न रहा हो—जिसने उनको मंत्रणा और विचारणासे आत्मबल न पाया हो। आजके स्वतन्त्र भारतका नेतृत्व भी इस युगके महायोगी महात्मागांधीके हाथ में रहा है, तभी इतने वर्षकी खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः वापिस पानेमें भारत सफल हो पाया है। वास्तवमें भारतीय संस्कृतिको बनाने वाले और अपने तप, त्याग तथा सहन बलसे उसे कायम रखने वाले ये योगी जन ही हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतके अजायबघरों और कला-भवनोंकी सूची

भारत सरकारने हालमें 'इण्डिया टूरिस्ट इन्फार्मेशन नामकी एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जो भारतका टूर (परिभ्रमण) करने वालोंको कितनी ही आवश्यक सूचनाएँ देती है। उसमें यह सूचित करते हुए कि भारतवर्ष म्यूजिमों (अजायबघरों-अद्भुतालयों) और आर्टगेलेरीज (कला-भवनों आदि) की दृष्टिसे समृद्ध है, उन सबकी एक सूची दी है, जिसे अनेकान्तके पाठकोंकी जानकारीके लिये यहाँ प्रकाशित किया जाता है :—

(क) भारत सरकार द्वारा पलित पोषित (Maintained)

१. नेशनल आरचिव्ज प्रोफ इण्डिया, न्यू देहली।
२. देहली फोर्ट म्युजियम प्रोफ आर्क्योलाजी, देहली।
३. सेन्ट्रल एशियन एन्टीक्युटीज म्युजियम न्यू देहली
४. आर्क्योलाजिकल म्युजियम, नालन्दा।
५. आर्क्योलाजिकल म्युजियम, सारनाथ।
६. आर्क्योलाजिकल म्युजियम, नगरजूनी कोण्डा
७. फोर्ट सेंट जार्ज म्युजियम, मद्रास।
८. राजपूताना म्युजियम, अजमेर।
९. इन्डियन म्युजियम, कलकत्ता।
१०. विक्टोरिया मेमोरियलहॉल, कलकत्ता।

(ख) रियासती सरकारों द्वारा पालित-पोषित

१. स्टेट म्युजियम, भुवनेश्वर (उड़ीसा)
२. स्टेट म्युजियम, लखनऊ।
३. गवर्नमेंट म्युजियम मदरास।
४. कर्जन म्युजियम ओफ आर्क्योलाजी मथुरा।
५. सेन्ट्रल म्युजियम, नागपुर।
६. पटना म्युजियम, पटना।
७. स्टेट म्युजियम गोहाटी (आसाम)
८. पैलेस कोलेक्सन, औंध।
९. मैसूर गवर्नमेंट म्युजियम, बैंगलोर।
१०. बड़ीपाद म्युजियम, मयूरगंज (उड़ीसा)
११. खिविंग म्युजियम, मयूरगंज रियासत
१२. बड़ौदा स्टेट म्युजियम, एण्ड पिक्चर गैलेरी बड़ौदा।
१३. बर्टन म्युजियम, भावनगर (काठिया)
१४. भूरोसिंह म्युजियम, चम्बा (हिमाचल प्रदेश)
१५. आर्क्योलाजिकल म्युजियम हिम्मतनगर (ईडर)
१६. आर्क्योलाजिकल म्युजियम ग्वालियर।
१७. हैदराबाद म्युजियम, हैदराबाद।
१८. इन्दौर म्युजियम, इन्दौर।
१९. अलबर्ट म्युजियम, जयपुर।
२०. सरदार म्युजियम, जोधपुर
२१. जरडाईन म्युजियम, खजराहो, छतरपुर (विंध्य-प्रदेश)
२२. पद्दुकोट्टाइ म्युजियम पद्दुकोट्टाइ (मदरास)
२३. वैटसन म्युजियम प्रोफ एण्टीक्युटीज राजकोट (काठियावाड़)
२४. म्युजियम प्रोफ आर्क्योलाजी, सांची (भोपाल)
२५. स्टेट म्युजियम त्रिचुर (कोचीन)
२६. गवर्नमेंट (नेपियर्स) म्युजियम, त्रिवेन्द्रम् (ट्रावनकोर)
२७. विक्टोरिया हॉल म्युजियम, उदयपुर (राजपूताना)
२८. जूनागढ़ म्युजियम जूनागढ़ सौराष्ट)
२९. नवानगर म्युजियम, नवानगर (सौराष्ट)

(ग) ट्रस्टों द्वारा पालित-पोषित।

१. प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम ऑफ वैस्टर्न इण्डिया, बम्बई।
२. लार्डरिए महाराष्ट इन्डस्ट्रीयल म्युजियम, पूना।

(घ) प्राइवेट रूपसे पालित-पोषित।

१. भारतकला-भवन, बनारस यू० पी०)
२. सैन्ट ज्रेवीयर्स कालेल म्युजियम, बम्बई।
३. म्युजियम प्रोफ वंगीय साहित्यपरिषद, कलकत्ता।
४. आशुतोष म्युजियम, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, कलकत्ता।
५. भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना।

(ङ) म्युनिस्पिलटी द्वारा पालित पोषित।

१. इलाहाबाद म्युनिस्पिल म्युजियम, इलाहाबाद।
२. विक्टोरिया जुबिली म्युजियम, बेजवाडा।
३. आर्क्योलाजिकल म्युजियम, बीजापुर (बम्बई)
४. विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट म्युजियम, बम्बई
५. रायपुर म्युजियम, रायपुर (मध्यप्रदेश)

आशा है पुरातत्त्व तथा इतिहासादिके विद्वान इस सूची से लाभ उठाएँगे।

पन्नालालजैन अग्रवाल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वंगीय जैन पुरावृत्त

(श्री बाबू छोटेलालजी जैन कलकत्ता)

(गत किरणसे आगे)

विभिन्न जातियाँ

महाभारत, मनुस्मृति, देवलस्मृति, ब्रह्मवैवर्तपुराण, विष्णुपुराण आदि ग्रंथोंमें प्रक्षिप्त श्लोक लगाकर या उन्हें परिवर्तित या परिवर्द्धित कर ब्राह्मणोंने जैन और बौद्धोंके प्रति अपना विद्वेष खूब साधन किया है और जो जो जातियाँ जैन और बौद्धधर्मकी अनुयायी थीं उनको वृषत्व और शूद्रभावापन्न घोषित कर दिया है इसे सभी इतिहास लेखक स्वीकार कर चुके हैं। भारतवर्षमें कितनी ही जातियाँ ऐसी हैं जिनका अतीत गौरवान्वित है और हीन न होते हुए भी वे अपनेको हीन समझने लगी हैं किन्तु ज्यों २ पुरातत्व प्रकाशमें आता जाता है ये जातियाँ अपनी महानताको ज्ञातकर अपने विलुप्त उच्च स्थानको प्राप्त कर रही हैं।

+ महात्मा बुद्धके बहुत पहले बंगालमें वेदविरोधी जैनधर्मका प्रभाव बहुत बढ़ चुका था। २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ई० पू० ८७७ अब्दमें जन्मे थे। इन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड और पंचाग्नि-साधन प्रभृति की निन्दा की थी। काशीसे मानभूम पर्यंत सुविस्तृत प्रदेशमें अनेक लोग उनके धर्मोपदेशसे विमुग्ध हो उनके वशीभूत हो गये थे। पार्श्वनाथके पूर्ववर्ती २२ तीर्थंकरोंने राजगृह, चम्पा राढ़की राजधानी सिंहपुर और सम्मेदशिखरमें याज्ञकोंके विरुद्ध जैनधर्मका प्रचार किया था। अंतिम तीर्थंकर श्रीमहावीर-स्वामी बुद्धदेवके प्रायः समसामयिक या अल्प पूर्ववर्ती थे। इन्होंने १२ वर्ष राढ़देशमें रहकर असभ्य जङ्गली जातियोंमें धर्मोपदेश प्रदान किया था। उस समय वेद विरोधी जैन और बौद्धमतोंने पौंड्रदेशमें और तत्पार्श्ववर्ती देशोंमें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी! सम्राट् विम्बरसारके समयसे मौर्यवंशके शेष राजा बृहद्रथके समय पर्यंत साढ़े तीनसौ वर्षों तक मगध पौंड्र बंगादि जनपद समूह बौद्ध और जैन प्रभावान्वि हो रहे थे। तत्पश्चात् गुप्तोंके प्रभाव-कालमें हिन्दू धर्मका पुनरभ्युदय हुआ। ऐतिहासिक लोगोंने स्थिर किया है कि अष्टादश पुराणोंमें अनेकोंकी रचना इसी समय हुई थी। ब्राह्मणोंने वेदविरोधी जातियोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कल्पनासम्मत नाना कथाएँ रचकर ग्रन्थोंमें प्रक्षिप्त कर दी। गुप्त नृपति बौद्ध और जैनधर्मके विद्वेषी नहीं थे। इसी समय वज्रयान, सहजयान, मन्त्रयान प्रभृति तांत्रिक बौद्धधर्मका प्रवर्तन हुआ और वंगदेशके जनसाधारणमें इनका विशेष प्रचार हुआ। यह तांत्रिक बौद्धधर्मका अभ्युदय, बौद्ध और हिन्दूधर्मके समन्वयका फल मालूम होता है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीने लिखा❀ है कि भारतवर्षमें पूर्वाङ्गमें ही बौद्धधर्मने सर्वापेक्षा अधिक प्राधान्य लाभ किया था। हुयेनत्सांगने सप्तम शताब्दीके प्रथमार्द्धमें वंगदेशमें ८-७ संघारामोंमें १२०००० भिक्षु देखे थे। एतद्भिन्न जैनधर्मके भिक्षु भी थे। भिक्षुओंके लिये नियम था कि तीन घरोंमें जानेके बाद चतुर्थगृहमें नहीं जा सकते हैं। और एक बार जिस घरमें भिक्षा पा चुके हैं उसमें फिर एक मास तक नहीं जा सकते हैं। सुतरां एक यतिका प्रतिपालन करनेके लिये अन्ततः १०० घर गृहस्थोंके होना चाहिये। इस हिसाबसे तत्कालीन बंग देशवर्ती ८। ९ नगरोंमें ही एक कोटि बौद्ध संख्या हो जाती है तब सारे बंगदेशमें तो और भी अधिक होंगे इसमें सन्देह नहीं है। अतः इनकी प्रधानता इससे स्पष्ट हो जाती है।

बंगलार पुरावृत्त (पृष्ठ १५९ में लिखा है कि 'ईस्वी चतुर्दश शताब्दीमें भी बंगदेशमें बौद्ध और जैनोंका अत्यन्त प्रभाव था।'

यही कारण है कि अंग वंग, कलिंग सौराष्ट्र और मगधदेशमें तीर्थयात्रा व्यतीत अन्य उद्देश्यसे गमन करने पर पुनः संस्कार अर्थात् प्रायश्चित्त कर्तव्य. मनुसंहिता + में लिखा गया। इसी प्रकार शूलपाणि और देवलस्मृतियों

+ बंगे क्षत्रिय पुण्ड्रजाति-श्री मुरारीमोहन सरकार पृ० ९१

❀ Discovery of Living Buddhism in Bengal.

+ अंग वंगकलिंगेषु सौराष्ट्रे मगधेषु च
तीर्थयात्रा विना गच्छन्-पुनः संस्कारमर्हति ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में भी यही आज्ञा दी है *। इन स्मृतियोंके उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि अन्यान्य देशोंमें हिन्दुगण दीर्घकाल-से जैन बौद्ध प्लावित देश समूहके संस्पर्शमें आनेका सुयोग पाकर कहीं उन धर्मोंको ग्रहण न कर लें। पाठक देखें कि बौद्ध और जैनगण हिन्दुओंकी आंखोंमें किस प्रकार हेय हो गए। यहाँ तक कि जैन और बौद्धधर्मानुराग प्रदर्शनके अपराधसे बंगालकी ब्राह्मणेतर तावत्-हिन्दुजाति मात्र शूद्रपर्यायान्तर्गत घोषित हो गई थी। यह उशनसंहिताके निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट प्रतीयमान होता है :—

बुद्धश्रावकनिर्गूढ़ाः पञ्चरात्राविदोजनाः
कापालिकाः पाशुपताः पाषंडाश्चव-तद्विधा
यश्चश्नन्ति हविष्येते दुरात्मानन्न तामसाः ४।२४-२५

अर्थात्—बौद्ध श्रावक, निर्गूढ़ (दिगम्बर जैन) पंचरात्रिवित, कापालिक, पाशुपत इत्यादि जितने पाखण्ड हैं वे सब दुरात्मा तामस व्यक्ति जिसके श्राद्धमें भोजन करते हैं उनका श्राद्ध असिद्ध है।

यह विद्वेष और स्वार्थ यहाँ तक बढ़ा कि बंगाली ब्राह्मण समाज, ब्राह्मण भिन्न क्षत्रिय, और वैश्य द्विजातित्रयका आस्तित्व बंगालमें स्वीकार ही नहीं करते हैं—सभीको शूद्र पर्यायमें ढकेल दिया है और उनकी उत्पत्ति भी नानारूप शंकरोंसे कल्पित करली है और जैन-प्राधान्यकालमें यह सब निषेधात्मक श्लोकावली प्रसिद्ध की गई है।

वेदमें लिखा है—अन्नान वः प्रजा भक्षीस्यैति। त एते अन्ध्राःपुण्ड्राः शवराः पुलिन्दाः मुतिवाः इत्युदन्तो बहवो भवन्ति। ये वैश्वामित्रा दस्युनां भूचिष्ठाः ऐतरेय ७। १८)-अर्थात्—अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मुतिघ प्रभृति जातियाँ विश्वामित्रकी सन्तान हैं एवं ये दस्यु अर्थात् म्लेच्छ हैं। मनुने दस्यु शब्दकी यह संज्ञा निर्देश की है—ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्यादि जो जातियाँ बाह्य जातिके भावको प्राप्त हो गई हैं, वे म्लेच्छभाषी वा आर्यभाषी जो भी हों सब दस्यु हैं (मनु—१०—४५) इसी प्रकार विष्णु-पुराणमें 'भविष्य-मगधराजवंश प्रसङ्गमें लिखा है कि विश्वस्फाटिक नामक एक राजा होगा, वह अन्य वर्ण प्रवर्तित करेगा और ब्राह्मण धर्मके विरोधी कैवर्त, कड़ और पुलिंद गणोंको राज्यमें स्थापित करेगा (वि० पु० ४ र्थ अंश, २४ अध्याय) ब्राह्मणधर्म विरोधी या भिन्नधर्मी-जनसमूहको ब्राह्मण शास्त्रोंमें दस्यु, म्लेच्छ, इत्यादि विशेषणोंसे अभिहित किया है।

अतएव ब्राह्मणोंने जिन प्राचीन जातियोंको भ्रष्ट, दस्यु, अनार्य वगैरह सम्बोधन करके घृणा प्रकट की है, उनका पता लगाया जाय तो उनमेंसे सर्व नहीं तो अनेक अवश्य जैनधर्मावलम्बी थीं ऐसा प्रगट होगा।

बङ्गालमें इस समय कई जातियाँ ऐसी हैं जो एक समय ज्ञानगुण शिक्षा और कर्मसे सभ्यताके उच्चतम सोपानपर अधिरुढ़ थीं किन्तु आज वे ही ब्राह्मणोंके विद्वेषके कारण अपने अतीत गौरवसे विस्मृत हो दीन हीन अवस्थामें हैं। इन जातियोंमेंसे अब यहाँ पुण्ड्र, पुलिन्द, सातशती सराक आदि कतिपय जातियों पर विचार करना है।

बङ्गालमें तीन प्रकारके जैनी हैं—एक तो वे जो यहाँके आदि अधिवासी हैं और जिनमें कितनोंको तो ब्राह्मण विद्वेषके कारण अपना धर्म परिवर्तन करना पड़ा, कितने ही दृढ़धर्मी शूद्र-संज्ञा-भुक्त हुए और कितने ही अत्याचारोंसे पिसते हुए अन्तमें मुसलमान हो गए। दूसरे वे जो प्राचीन-प्रवासी-पश्चात् निवासी हैं जैसे सराक। और तीसरे वे जो नूतन-प्रवासी अर्थात् जिनका यहाँ गत तीन चारसौ वर्षोंसे प्रवास है।

सप्तशती (ब्राह्मण)

प्राच्यविद्या-महार्णव, विश्वकोषप्रणेता, श्री नगेन्द्रनाथ वसुने अपने बंगेर जातीय इतिहासे (प्रथम भागमें लिखा है कि:—

'बंगालके नाना स्थानोंमें सप्तशती नामक एक श्रेणी ब्राह्मण वास करते हैं। उनमें अधिकांश वंगवासी आदि ब्रह्मणोंके वंशधर हैं। जिस प्रकार मानवका शैशव यौवन और वार्द्धक्य यथाक्रमसे आकर स्वस्थान अधिकार करता हैं उत्थान, पतन, विकाश अथवा विनाश जिस प्रकार प्रत्येक जीवनका अवश्यम्भावी फल है, प्रत्येक समाजका भी उसी प्रकार क्रमिक परिणाम परिदृष्ट होता है। सप्तशती समाज भी कालचक्रके आवर्तनमें यथाक्रमसे शैशव, यौवन, अतिक्रम कर जराजीर्ण वार्द्धक्यमें उपनीत हुआ है इसीसे यह प्राचीन समाज आज निस्तब्ध निश्चल और मुह्यमान

* सिन्धु-सौवीर—सौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यान्तिवासिनः
अंग-वंग-कलिंगौडान् गत्वा संस्कारमर्हति ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है अनेकों धर्मसंघर्षमें कितने ही विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रबल आक्रमणोंसे यह समाज आक्रांत हुआ है, और कितने विषम शेलोंसे इसका वक्षस्थल घायल हुआ है। आज यह कौन जानता है।

वर्तमान ऐतिहासिकगण घोषणा करेंगे कि इस समाज का जो अधःपतन हुआ है उसका मूल है बौद्ध विप्लव। किन्तु हम कहेंगे कि केवल बौद्धोंसे इस समाजका विशेष अनिष्ट साधित नहीं हुआ है। जिस प्रकार बहु सहस्रवर्षों पूर्वसे इस समाजका अभ्युत्थान हुआ था उसी प्रकार बौद्धधर्म प्रचारके पहले ही इनका पतनारम्भ हुआ है।

पहले ये ब्रह्मण वेदमार्ग परिभ्रष्ट नहीं थे और वेदविद् और साग्निक ब्राह्मण कहे जाते थे। किन्तु यहाँ (वंग) की जलवायुका ऐसा गुण है कि सब कोई नित्यनूतनके पक्षपाती हैं और पुरातनके साथ नूतनको मिलानेके लिए तत्पर रहते हैं। इस आवहवामें पुरातन वैदिक मार्गके ऊपर भी अभिनव साम्प्रदायिकोंकी भीषण झटिका प्रवाहित हुई थी। उसीके फलसे गौड (वंग) देशमें जैनधर्मादिका अभ्युदय हुआ। जब भगवान् शाक्य बुद्धने जन्म ग्रहण नहीं किया था उसके पहलेसे ही गौडदेशमें शैव, कोमार, और जैनमत प्रवर्तित थे। जैनोंके धर्म-नैतिक इतिहाससे पता चलता है कि शाक्यबुद्धसे बहुत पहले बंगालमें जैन प्रभाव विस्तृत हो गया था। जैनोंके चौबीसों तीर्थंकर शाक्यबुद्ध-के पूर्ववर्ती हैं और इनमें २१ तीर्थंकरोंके साथ बंगालका संस्राव है इनमें १२ वें तीर्थंकर वसुपूज्यने भागलपुरके निकटवर्ती चम्पापुरीमें जन्म ग्रहण किया और मोक्ष लाभ किया। और द्वितीयसे ११ वें १३ वें से २१ वें और २३ वें श्री पार्श्वनाथ इन २० तीर्थंकरोंने मानभूम जिलास्थ सम्मेद-शिखर वर्तमान पार्श्वनाथ पर्वत पर मुक्त हुए। पार्श्वनाथका निर्वाण ७७७ खृष्ट पूर्वाब्दमें हुआ था। इन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड और पंचाग्निसाधन प्रभृतिकी विशेष निंदा की थी। उस समय वैदिकाचार और पंचाग्निसाधनादि अनेक कर्मकाण्ड प्रचलित थे। पार्श्वनाथकी जीवनीसे इनका अनेक आभास मिलता है। तीर्थंकरगण कर्मकाण्ड विद्वेषी होने पर भी ब्राह्मण विद्वेषी कोई न थे। सभी ब्राह्मणोंकी यथोचित भक्ति श्रद्धा करते थे अब भी जैन समाजमें उसका पालन है।

इन सब महात्माओंके प्रयाससे सहस्रों लोग जैनधर्ममें दीक्षित हुए थे। और इन्हींके प्रभावसे यहांके ब्राह्मणोंके हृदयमें कर्मकांडोंके प्रति आस्था कम होती गई। कर्मकांडों-का आदर कम होने पर ब्राह्मणेतर विधर्मीगण कर्मकांडका अनादर और निंदा करने लगे। उत्साहके अभावमें और निर्वातस्थानमें अग्निकी तरह साग्निक ब्राह्मणगण निरा-ग्निक हो गये। इसी समय उन ब्राह्मणोंकी स्व-सामाजिक और धर्मनैतिक अवनतिका सूत्रपात हुआ। उसके बाद सम्राट् अशोककी अनुशासन लिपिमें 'अहिंसाका माहात्म्य सर्वत्र प्रचारित हुआ और जनसाधारणका मन उससे विचलित हुआ। यहाँके अधिकांश ब्राह्मणोंने वैदिकाचारका परित्याग किया। जिन्होंने पहले ब्राह्मणधर्म परित्याग नहीं किया वे वैदिकी पूजा विसर्जन कर पौराणिक देव-पूजामें अनुरक्त हो गये। पौराणिक देव पूजाका प्रभाव बंग वासियों पर हुआ। जिस समय बंगालमें पौराणिक देवपूजाका प्रसार हो रहा था उस समय धीरे धीरे उसके अभ्यन्तरमें बौद्धमत प्रवेश कर रहा था। पौराणिक और बौद्धगणोंके संघर्षमें बौद्धधर्मने जय लाभ किया। जैन प्रभृति अन्य प्रबल मत भी क्रमसे उसके अनुवर्त्ती होने लगे। इसी समय गौड मंडलमें तांत्रिकताकी सूचना प्रारम्भ हुई। वैदिकोंका प्रभाव तो पहिले ही तिरोहित हो चुका था। अब पौराणिक भी नतमस्तक हो गये।

खृष्टीय (ईसवी) अष्टम शताब्दिमें गौडमें फिर ब्राह्मणधर्मका पुनरभ्युदय हुआ। इसी समय गौडेश्वरने कान्यकुब्जसे पंच साग्निक ब्राह्मणोंको आमन्त्रण कर बुलाया। इसी समय गौडीय ब्राह्मणोंने 'सप्तशती' आख्या प्राप्तकी। उस समय गौडमें ७०० घर उन प्राचीन ब्राह्मणोंके थे जिनको वेदाधिकार नहीं था। कन्नोजागत पंच ब्राह्मणोंसे ७०० ब्राह्मणोंके पार्थक्य या भिन्नता रखनेके लिये सप्तशती' आख्याकी सृष्टि हुई। दूसरा अभिमत यह है कि सरस्वती नदीके तीरवासी सारस्वत ब्राह्मण ही सर्वप्रथम गौडदेशमें आये थे और राढ़ देशके पूर्वांशमें सप्तशतिका (वर्तमान सातसइका) नामक जनपदमें वास करनेके कारण सप्तशती या सातशती नामसे कहे जाने लगे। इस सप्तशतिका जनपदका कितना ही अंश अब वर्द्ध-मान जिलेमें सातशतका या सातसइका परगनामें परिणत हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गया है। इसकी वर्तमान सीमा उत्तरमें ब्राह्मणी नदी, दक्षिण-पूर्व सीमा भागीरथी (गंगा) और पश्चिममें शाहबाद परगना है।

उपरोक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन कालमें ये सप्तशती ब्राह्मण भी जैनधर्मानुयायी थे। पहाड़पुरके गुप्तकालीन ताम्रशासनमें भी नाथशर्मा और उनकी भार्या रामीका उल्लेख हुआ है जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि पंचम शताब्द तक बंगालमें जैन ब्राह्मण थे।

पुण्डोजाति

बंगालके उत्तर पश्चिमांशमें मालदा, राजशाही, वीरभूम, मुर्शिदाबाद, जिलोंमें पुंड्रो-पुण्डा पोंड्रा-पुण्डरी, पुण्डरीक, नामसे परिचित एक जाति वास करती है। ये अपनेको क्षत्रिय पुण्ड्रगणोंके वंशधर बताते हैं। शास्त्रोंमें (पुण्ड्र) शब्द देश और जातिवाचक रूपसे व्यवहृत हुआ है। पुण्ड्रदेशमें रहनेके कारण ये लोग पुण्ड्र कहे जाने लगे और पुण्ड्र या पौण्ड्र शब्दके अपभ्रष्ट उच्चारणसे पुण्डो, पुण्डरी आदि शब्द बन गये हैं। प्रसिद्ध मालदह नगरसे दो कोश उत्तरपूर्व और गौड नगरसे ८ कोश उत्तरमें फिरोजाबाद नामक एक अति प्राचीन स्थान है। स्थानीय लोग इस स्थानको पोंडोवा या पुंडावा कहते हैं। इस स्थानसे १ कोश उत्तर-पश्चिममें और मालदहसे २½ कोस उत्तरमें बारदोवारी—पुण्डोवाके भग्नावशेष हैं।

इस पुण्ड्रजातिने कमसे कम छः हजार वर्ष पहले वर्तमान बंगदेशके उत्तर पश्चिम भाग अर्थात्—पौण्ड्रदेश या पुण्ड्रदेशमें* अपने नामानुसार उपनिवेश स्थापनकर राज्य किया और ये लोग जैन धर्मानुयायी थे। अत एव इस क्षत्रिय पुण्ड्रजातिको भी ब्राह्मणोंने क्रोधके कारण शास्त्रोंमें प्रक्षेपण द्वारा वृषल या भ्रष्ट क्षत्रिय कहकर उल्लेख किया है×। इस जातिमें अभी तक जैनधर्मके संस्कारके फलस्वरूप मद्यमांसादिकका प्रचलन बिलकुल नहीं है और आचारविचार बहुत शुद्ध हैं। यदि ये लोग बौद्ध मतावलम्बी होते तो इनमें भी मांसका प्रचलन अवश्य रहता, फर मत्स्यान्न भक्षी प्रधान बंगदेशमें और खासकर तांत्रिक युगमेंसे निकलकर भी अबतक निरामिष-भोजी रहना इनके जैनत्वको और भी पुष्ट करता है। किन्तु अब ये लोग वैष्णवधर्मावलम्बी हैं। व्यवसाय वाणिज्य आदि करनेसे अब इनकी वैश्यवृत्ति हो गई है। उपरोक्त चारों जिलोंमें इस पुण्डो (पुण्ड्र) जातिके अधिकांश जन रहते हैं। मध्य बंगके नदिया, दक्षिण बंगके यशोहर और पूर्व बंगके पबना जिलोंमें भी अल्प संख्यामें ये पाये जाते हैं। बिहार जिलेके संथान परगनेके पाकूर अंचलमें भी इनका वास है। उड़ीसाके बाउद स्टेटमें भी इस जातिके लोग पाये जाते हैं और वहाँ पुण्डरी नामसे सत् शूद्र श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

राज्याधिकारच्युत हो जानेके कारण पुण्ड्रा जातिके लोग कृषि और शिल्प कौशलसे जीविकार्जन करते आ रहे हैं। इनमें सगोत्र विवाह निषिद्ध है। पुण्ड्र जातिमें विधवा विवाह भी प्रचलित नहीं है। इनमें ३० गोत्र हैं जैसे काश्यप, अग्नि वैश्य, कन्व कर्ण, अवट विद चान्द्रमास, मालायन, मौदगल्य, माधूय ताण्डि मुदगल, वैयाघ्रपद तौडि, शालिमन, चिकित, कुशिक, वेणु, आलम्बायन शालाक्ष, लौक, वारक्य, सौम्य, भलन्दन कांसलायन शाण्डिल्य, मोज्जायन, पराशर लोहायन, और शंख इनमें कच्ची (सिद्धान्न) और पक्की (पक्वान्न) प्रथाकी कट्टरता और जाति-पांतिका प्रचलन है पौण्ड्रदेशमें पहले जैनोंका ही प्रभाव था। अतः विद्वेषके कारण इस जैनपुण्डजातिको ब्राह्मणोंने शूद्र संज्ञा दे दी है। वैष्णवधर्मको अपना लेनेके कारण इन पर इतनी कृपा कर दी कि इन्हें सत्-शूद्रोंमें गर्भित कर लिया है*।

* जैन धर्मप्रवर्तक पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी एवं 'अहिंसा परमो धर्म' मन्त्रके ऋषि और धर्मके संस्थापक भगवान बुद्धने एक समय अपनी पदधूलिसे पौण्ड्रवर्द्धनको पवित्र किया था।

(देखो बंगे क्षत्रिय पुण्ड्रजाति—श्री मुरारी मोहन सरकार)

× मोकला, द्राविडा, लाटा, पौण्ड्रा कोराव शिरस्तथा,
शौंडिका दरदा दर्व्वा-श्चोराःशबरा बर्ब्बरा।
किराता पबना श्चैवस्तथा क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वमनुप्राप्ता ब्राह्मणानामर्षणात्॥
महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ३५

* यह ऊपर लिखा जा चुका है कि बंगालमें मात्र दो ही जाति या वर्ण हैं। ब्राह्मण और शूद्र।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पोदजाति

बंगालके उत्तर पश्चिमांश जिलोंमें पुण्डोजातिके सम्बन्धमें ऊपर लिखा जा चुका है। उन्हीं जिलोंमें से मालदा, राजशाही, मुर्शिदाबाद और वीरभूममें एक पोद नामक जाति भी निवास करती है पोद और पुण्डो (पुनरोसे) दोनों ही की मूल जाति एक है। किन्तु निवास स्थानकी दूरीके कारण उनका परस्पर सम्बन्ध भंग हो नहीं हो गया किन्तु वे एक दूसरेको अपनेसे हीन समझने लगे हैं।

कुलतंत्र विश्वकोष और मर्दुम सुमारी (Censur Report से पता लगता है कि पौंड्र क्षत्रियोंके चार विभाग हैं—जिनमें पुनरो तो उत्तर राढीय और दक्षिण राढीय इस प्रकार दो राढो विभागोंको और पोद वंगज और ओड्रज (उड़िया विभागोंको प्रदर्शित करते हैं।

पश्चिम वंगके अधिकांश भागमें और खासकर चौबीस-परगना, खुलना और मिदनापुर जिलोंमें इनका निवास है। और हवड़ा, हुगली, नदिया और जेसोर (यशोहर) जिलों में भी ये अल्पसंख्यामें पाये जाते हैं। बंगोपसागरके सन्निहित प्रदेश समूहमें इस जातिके अधिकांश लोग वास करते हैं। ये पोद, पोदराज, पद्मराज, पद्मराज इन सब नामोंसे परिचित हैं। ये लोग अपनेको प्राचीन पुण्ड्रगणोंके वंशधर बताते हैं।

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्रीके मतानुसार × महाभारत पुराण और वेद प्रभृति शास्त्रोंमें जिस पुलिंद नामक अनार्य जातिका उल्लेख हुआ है उसीसे समुत्पन्न यह पोद जाति है। अमरकोशमें पुलिंदोंको म्लेच्छ संज्ञा दी गई है। कवि कंकणने अपने चंडी काव्यमें (सन् १५७७) तदानीन्तन वंगदेशवासी जातियोंके साथ पुलिंदगणोंको किरात, कोलादि म्लेच्छोंमें रखा है "पुलिन्द किरात, कोलादि हाटेने वाजा चढोल।"

किन्तु पुलिंद शब्दका अपभ्रंश पोद किसी भी नियमके अनुसार बन नहीं सकता है।

वर्तमानमें इनकी हीनावस्था है और आचार व्यवहार भी निकृष्ट हैं। तो भी इनमें कर्णवेध, अन्नप्राशन, शौचाचार आदि उच्च जातियोंके धार्मिक अनुष्ठान प्रचलित हैं। इनमें विधवा विवाह वर्जित है और तलाक भी नहीं है। इनके गोत्र हैं—आंगिरस, आलव्याल, धानेश्री, सांडिल्य, काश्यप, भरद्वाज कौशिक, मोद्गल्य, मधुकूल और हंसन इत्यादि। वैवाहिक नियम भी इनमें उच्चजातियों की तरहके हैं। कुशण्डिका, व्यतीत विवाहके सब अंग ये पालन करते हैं पर सम्प्रदानको विवाहका प्रधान अंग ये मानते हैं। अब इनकी गणना सत् शूद्रोंमें की जाती है। पोद जाती खांटी कृषक जाति है।

प्रोफेसर पंचानन मित्र, एम० ए० पी० आर० एस० ने लिखा है कि "यह सम्भव है कि बंगालके पोद मूलतः जैनी होनेके कारण क्षति ग्रस्त हुए हैं†। पोद (पुनरो) जाति पन्ना और पद्मरागकी खानोंसे धन संचय कर चुके हैं। दक्खनका 'पदिपूर' नामक स्थान इन्हीं पोदगणोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ मालुम होता है। पन्ना पद्मराज खनिज रत्नोंके नामोंसे भी इस जातिके नाम मिलते जुलते हैं। प्राचीन कालमें पट्ट शब्दसे सनके वस्त्र समझे जाते थे। विश्वकोशमें पुण्ड और पट्ट वस्त्रके समानार्थवाची शब्द हैं। इससे मालूम होता है कि पुंडो और पोद जाति भी वस्त्र व्यवसायी थी। एक ओर पौंड्रादि जातियोंके ऊपर ब्राह्मणोंका अत्याचार बढ़ा और दूसरी ओर मुसलमानोंने भी इन्हें तङ्ग करना प्रारम्भ किया इससे इन जातियोंके लाखों मनुष्य इसलाम धर्मानुयायी बन गये❀। पोद जातिके कुछ लोग हुगली जिलेके पाण्डुआके आस पास भी पाये जाते हैं और वे मछुए (धीवर) हैं किन्तु अन्य पोद गणोंसे इनका किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है।

कायस्थजाति

गौड़वंगके सामाजिक, राजनैतिक, धर्मसाम्प्रादायिक इतिहासमें कायस्थ जातिने सर्वप्रधान स्थान आधिकार किया था। ज्ञान-गुण दया-दाक्षिण्य, शक्ति-सामर्थ्य धर्म कर्म सभी विषयोंमें यहाँका कायस्थ समाज एक दिन उन्नतिकी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था इसीसे गौड़-वंगका प्रकृत इतिहासका प्रधान अंश ही कायस्थ समाजका

× History of India by H. P. Shastri p. 32.

† The Cultivating Pods by Mahendr Nath Karan

❀ History of Gour by R. K. Chakravarty.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इतिहास है। अकबरके प्रधान सभासद् और ऐतिहासिक अबुलफज़लने लिखा है कि मुसलमान आगमनसे पूर्व १६३२ वर्षोंसे यह वङ्गभूमि भिन्न २ स्वाधीन राजवंशोंके शासनाधीन थी। अर्थात् एक दिन गौड़ वङ्ग कायस्थ प्रधान स्थान था।

राजकीय लेख्यविभागमें जो पुरुषानुक्रमसे नियोजित होते रहे हैं. समय पाकर उन्होंने ही 'कायस्थाख्या' प्राप्त की थी। सामान्य नकलनवीसी किरानी (Clerk) के कार्यसे लगाकर राजाधिकरणका राज सभाके संधि विग्रहकादिका कार्य पुरुषानुक्रममें जिनकी एकांत वृत्ति हो गई थी वे ही कायस्थ कहलाने लगे

प्राचीन लेखमालामें यह जाति लाजू कया राजूक, श्री करण, कर्णिक, कायस्थ ठकुर और श्री कर्णिक ठकुर इत्यादि संज्ञासे अभिहित हुई है। मौर्यसम्राट् अशोककी दिल्ली अलाहाबाद रधिया, मथिया, और रामपुर इत्यादि स्थानोंसे प्राप्त अशोकस्तम्भोंमें उत्कीर्ण धर्म लिपिमें राजूकोंका परिचय है–उसका अनुवाद निम्नलिखित है:—

" देवगणोंके प्रिय प्रियदर्शिराजा इस प्रकार कहते हैं–मेरे अभिषेकके ❀षड्विंशति वर्ष पश्चात् यह धर्मलिपी (मेरे आदेशसे) लिपिबद्ध हुई। मेरे राजूकगण बहु-लोगोंके मध्यमें शतसहस्त्र प्राणिगणोंके मध्यमें शासन कर्तृरूपसे प्रतिष्ठित हुए हैं। उनको पुरस्कार और दंड-विधान करनेकी पूर्ण स्वाधीनता मैंने दी है। क्यों ? जिससे राजूकगण निर्विघ्नता और निर्भयतासे अपना कार्य कर सकें, जनपदके प्रजा साधारणके हित और सुख विधान कर सकें एवं अनुग्रह कर सकें। किस प्रकार प्रजागण सुखी एवं दुखी होगी यह वे जानते हैं। वे जन और जनपदको धर्मानुसार उपदेश करेंगे। क्यों ? इस कार्यसे वे इस लोक और परलोकमें परम सुख लाभ कर सकेंगे। राजूकसर्वदा ही मेरी सेवा करनेके अभिलाषी हैं मेरे अपर (अन्य) कर्मचारीगण भी. जो मेरे अभिप्रायको जानते हैं, मेरे कार्य करेंगे और वे भी प्रजागणको इस प्रकार आदेश देंगे कि जिससे राजूकगण मेरे अनुग्रह लाभमें समर्थ हो सकें। जिस प्रकार कोई व्यक्ति उपयुक्त धात्रीके हाथमें शिशुको न्यस्त कर शान्ति बोध करता है और मन ही मनमें सोचता है कि धात्री मेरे शिशुको भली प्रकार रखेगी, मैं भी उसी प्रकार जानपदगणके मंगल और सुखके लिये राजूकोंसे कार्य करवाता हूँ। निर्मलतासे एवं शान्ति-बोध कर विमन न होकर वे अपने कामको कर सकेंगे। इसी लिए मैंने पुरस्कार और दण्डविधानमें राजूकगणोंको सम्पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की है। मेरा अभिप्राय क्या है ? वह यह है कि राजकीय कार्यमें वे समता दिखावेंगे, दण्ड-विधानमें भी समता दिखावेंगे।"

राजूकगणोंका किस प्रकार प्रभाव था, अशोक लिपिसे उसका स्पष्ट आभास मिलजाता है। बूल्हर साहबने राजूक-गणोंको "कायस्थ" माना है। मेदिनीपुर वासी एक श्रेणीके कायस्थ आज भी "राजू" नामसे कहे जाते हैं।

प्रोफेसर जेकोबीके जैन प्राकृतमें लाजूक या राजूक सूचक रज्जू शब्द कल्पसूत्रमें मिला है जिसका अर्थ है लेखक किराणी (Clerk)। राजूक और कायस्थ दोनों ही शब्द प्राचीन शास्त्रोंमें एकार्थवाची हैं। सुप्रसिद्ध बूल्हर साहबने लिखा है कि अशोककी उपरोक्त स्तम्भ लिपि जब प्रचारित हुई थी उस समय प्रियदर्शीने बौद्ध-धर्म ग्रहण नहीं किया था। और तब वे ब्राह्मण, बौद्ध, और जैनोंको समभावसे देखते थे। ऐसी अवस्थामें राजूक-गणोंको जो सम्मान और अधिकार प्रदान किया था वह पूर्व प्रथाका ही अनुवर्तन था।

पर्वत पर खोदित अशोकके तृतीय अनुशासनसे जाना जाता है कि राजूकगण केवल शासन वा राजस्व विभागमें ही सर्वेसर्वा नहीं थे किन्तु धर्मविभागमें भी उनका विशेष हाथ आ गया था (जब अशोक बौद्ध धर्मानुयायी हो गया था) और वे सम्राट् अशोकद्वारा धर्म महामात्यपदमें अधिष्ठित हो गये थे। अधिक सम्भव है कि जिस दिनसे राजूकगण कराध्यक्षसे धर्माध्यक्ष हुए उसी दिनसे ब्राह्मण शास्त्रकारगणोंकी विषदृष्टिमें पड़ गये और इसी कारण सारे पुराणमें (अध्याय १६) राजोपसेवक धर्माचार्य कायस्थगण अपांक्तेय बना दिये गये (अध्याय १६)।

विद्वानोंके मतसे मौर्यसम्राट् अशोक वृद्धावस्थामें यद्यपि कट्टर धर्मानुयायी थे तो भी सब धर्मोंके प्रति समभावसे सम्मान प्रदर्शन करते थे और प्रजाको धर्मसम्बन्धमें पूर्ण स्वाधीनता थी। साधारण प्रजावर्ग अशोकके व्यवहारसे सन्तुष्ट होने पर भी ब्राह्मण धर्मके नेता ब्राह्मण-गण कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे। कारण स्मरणातीत-

❀ वंगेर जातीय इतिहास—श्री नगेन्द्रनाथ वसु (विश्वकोष संकलयिता, प्राच्य विद्या महार्णव-सिद्धान्त वारिधि प्रणीत–राजन्यकाण्ड, कायस्थकाण्ड, प्रथमांश।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालसे जो अविसम्वादित श्रेष्ठता वे भोग करते आरहे थे, उसके मूलमें कुठाराघात हुआ—सब जातियां समान स्वाधीनता पाकर कौन अब उन ब्राह्मणोंको पहलेकी तरह सन्मान और श्रद्धा करेंगे। इस प्रकारकी धारणासे उनके मनमें दारुण विद्वेषका संचार हो गया। इसके बाद मौर्य-सम्राट्ने जब दण्ड-समता और व्यवहार समताकी रक्षाके लिए विधि-व्यवस्था प्रचारित करने लगे तब उस विद्वेषाग्निमें उपयुक्त अनिल-संचार हो गया। ब्रह्मणधर्मके प्राधान्य कालमें अपराधके सम्बन्धमें ब्राह्मणोंको एक प्रकारसे स्वतन्त्रता थी—ब्राह्मण चाहे जितना गर्हित अपराध करें तो भी उनको कभी प्राणदण्ड नहीं मिलता था, न उनके लिये किसी प्रकारका शारीरिक दण्ड था। साक्षी (गवाही) देनेके लिए उनको धर्माधिकरणमें उपस्थित होनेके लिये बाध्य नहीं किया जा सकता था। साक्षी देने पर उनको जिरह नहीं कर सकते थे। किन्तु व्यवहार समताकी प्रतिष्ठा कर अशोकने उनको इन सब चिरन्तन अधिकारोंसे वंचित कर दिया। अब तो उनको भी घृणित, अस्पृश्य, अनार्य एवं शूद्र प्रभृतोंके साथ समान भावसे शूलारोहण और कारावासादि क्लेश सह्य करने पड़ेंगे। बस इन सब बातोंसे अशोकका वंश ब्राह्मणोंका चक्षुःशूल हो गया। और उसके ध्वंसके लिए वे बद्धपरिकर हो गये। अशोककी मृत्युके बाद मौर्यराजाके प्रधान सेनापति पुष्यमित्रको राजत्वका लोभ दिखाकर राजाके विरुद्ध ब्राह्मणोंने उत्तेजित कर दिया। पुष्यमित्र परम ब्राह्मण भक्त था। एक बार ग्रीक लोगोंने जब पश्चिम प्रान्त पर आक्रमण किया था तब पुष्यमित्र उनको पराजित कर जब पाटलीपुत्रमें लौटा, तब मौर्याधिप बृहद्रथने उसके अभ्यर्थनार्थ नगरके बाहर एक विराट सैन्य-प्रदर्शनी की व्यवस्था की। उत्सवके बीचमें ही किस प्रकार किसीका एक तीर महाराजके ललाटमें लगा और उसी जगह उनका देहान्त हो गया।

ब्राह्मणधर्मके भक्त-सेवक पुष्यमित्रने इस प्रकार मौर्यवंशका ध्वंस साधन कर भारतके सिंहासन पर उपविष्ट हुए और तत्काल ही पूर्वब्राह्मण-धर्मकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई जहाँसे अहिंसाधर्म घोषित हुआ था उसी पाटलीपुत्रके वक्षस्थल पर बैठकर पुष्यमित्रने एक विराट अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर अहिंसाधर्मके विरुद्ध घोषणा की और पुष्यमित्रके आधिपत्य विस्तारके साथ २ ब्राह्मणगण पुनः समाजके, धर्मके, एवं आचार-व्यवहारके नेता हो गये और राज्यको उपदेश देकर चलाने लगे।

जब शुंगवंश वैदिक क्रिया-काण्ड प्रचार द्वारा अहिंसाधर्मका मूलोच्छेद करनेमें अग्रेसर हुआ तब अहिंसाधर्मके पृष्ठपोषक बौद्ध और जैनाचार्यगण भी निश्चिन्त, और निश्चेष्ट नहीं थे। बौद्धधर्मानुरक्त यवन नरपति मिलिंदने शुंगाधिकार पर आक्रमण किया पर वे सफल न हो सके। जैनधर्मी कलिंगाधिपति खारवेलने (ई पूर्व०-१७१) मगध पर आक्रमण किया और पुष्यमित्रको पराजित कर पुनः जैनधर्मकी प्रतिष्ठा की।

प्रायः २३५ ई०पू० से ७८ ईस्वी पूर्वाब्द पर्यंत आर्यावर्तमें शुंग और कान्व वंशके अधिकार कालमें ब्राह्मणोंका प्राधान्य अप्रतिहत था। इसके पहले बौद्ध और जैनाधिकारके समय जो प्रबल थे, इस समय उनकी पूर्व प्रति-पत्तिका बहुत कुछ ह्रास हो गया था। उसीके साथ मालूम होता है कि राजूकगण (कायस्थ) भी पूर्व सन्मानच्युत और ब्राह्मणोंके विद्वेष भाजन हो गये।

यह पहले लिखा जा चुका है कि जैनोंके प्राचीन ग्रन्थोंसे यह मालूम होता है कि खृष्ट जन्मके ८०० वर्ष पूर्व २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामीने पुण्ड्र, राढ, और ताम्रलिप्त प्रदेशमें वैदिक-कर्मकाण्डके प्रतिकूल "चातुर्याम धर्मका" प्रचार किया था और उनके पहले श्री कृष्णके कुटुम्बी २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथने अंग बंगमें भिक्षुधर्म प्रचार किया था। बुद्ध और अंतिम तीर्थंकर महावीर-स्वामीने भी यथाक्रम अंग और राढ़ देशमें अपने २ धर्ममत प्रचार किये थे। ये सभी वैदिक आर्यधर्म विरोधी थे और इनके प्रभावसे प्राच्यभारतका अनेक अंश वैदिकाचारविहीन था—इस कारणसे यहाँ अति-पूर्वकालमें ब्राह्मण प्रभाव नहीं था। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा। वैदिक विप्रगण अंग वंगके प्रति अति घृणासे दृष्टिपात कर चुके हैं। इसी कारणसे ब्राह्मणोंके ग्रन्थोंमें अंग वंगकी सुप्राचीन वार्ताको स्थान नहीं मिला और जो जैन बौद्धादिकोंने लिखा था वह सब सम्भवतः ब्राह्मणाभ्युदके समय प्रयत्नाभावके कारण विलुप्त हो गया है। उसी अतीतकालकी क्षीणस्मृति प्रचलित एक दो बौद्ध और जैन ग्रन्थोंमें उपलब्ध होती है। उनसे मालूम होता है कि—महावीर स्वामीने अंग देशके चम्पा नगरीमें एक कायस्थके गृहमें एक बार पारणा किया था। बिम्बसारके पुत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अजातशत्रुने जब चम्पाको राजधानी बनाया था उस समय वहाँ बौद्ध प्रभाव था किन्तु अल्पदिनों बाद गणधर सुधर्मस्वामीने जम्बूस्वामीके साथ चम्पामें आकर जैनधर्म प्रचार किया था। इसके बाद जम्बूस्वामीके शिष्य वत्सगोत्र सम्भूत स्वयंभव यहाँ आये और उनके निकट जैनधर्मका उपदेश श्रवण कर अनेक लोग जैनधर्ममें दीक्षित हुए थे। इसके बाद अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहुका अभ्युदय हुआ। समस्त भारतमें इनके शिष्य प्रशिष्य थे। इनके काश्यप गोत्रीय चार प्रधान शिष्य थे उनमें प्रधान शिष्य गोदास थे इन गोदाससे चार शाखाओंकी सृष्टि हुई, इनका नाम था ताम्रलिप्तिका कोटीवर्षीया, पुण्ड-वर्द्धनीया और दासीकर्व्वटीया। अतिप्राचीन कालमें इन चार शाखाओंके नामसे यह प्रतिपन्न होता है कि दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम समस्त बंगमें जैनोंकी शाखा प्रशाखा विस्तृत हुई थीं। इससे स्पष्ट होता है कि अति प्राचीनकालसे राढ, वंगमें विशेषतासे जैन प्रभाव और उसके साथ बौद्ध संस्रव था।

उत्तर और पश्चिम वंगमें गुप्ताधिकार विस्तारके साथ वैदिक और पौराणिक मत प्रचलित होने पर भी पूर्व और दक्षिण वंगमें बहुत समय तक जैन निर्ग्रन्थ और बौद्ध श्रमणोंकी लीलास्थली कही जाती थी।

जैन और बौद्ध ग्रन्थोंमें ब्रह्मदत्त नृपतिका नाम मिलता हैं। अबुल फ़जलकी कथाका विश्वास करनेसे उनको कायस्थ नृपति मानना पड़ेगा। अंग और पश्चिम वंग उनके अधिकारसे निकलकर श्रेणिक राजाके आधीन हो जाने पर ब्रह्मदत्तने पूर्व वंग और दक्षिण राढ़को आश्रित किया। उस सुप्राचीनकालसे लगाकर गुप्तशासनके पूर्व पर्यन्त यहाँ के कायस्थगण या तो जैन या बौद्ध-धर्मके पक्षपाती थे। बहुशत वर्षोंसे जिस धर्मका प्रभाव जिस समाजपर आधिपत्य विस्तार कर चुका था, वह मूलधर्म विलुप्त होनेपर भी समाजके स्तर स्तरमें प्रस्तररेखावत—उसका अपना चिन्ह अवश्य रह जायेगा। इसी कारणसे यहाँकी उस पूर्वतन कायस्थ-समाजके अनन्तर जाल वर्तमान समाजमें भी उसकी क्षीण स्मृतिका अत्यन्ताभाव नहीं हुआ।

आदित्य, चन्द्र, देव, दत्त, मित्र, घोष, सेन, कुण्डु, पालित, भोग, भुजि नन्दी, नाग प्रभृति उपाधि प्राचीन कालसे बंगालके कायस्थ समाजमें प्रचलित हैं। इनके पूर्व पुरुष पश्चिम भारतसे उपरोक्त जिस २ पदवीयुक्त होकर आये थे, उनके वंशधर भी उसी उसी पदवीको व्यवहार करते रहे हैं और आज भी वे उपाधि यहां प्रचलित हैं। अंतमें वसु महाशयने लिखा है कि अति-पूर्वागत कायस्थ-गण इस देशकी जलवायु और साम्प्रदायिक धर्मप्रभावके गुणसे अधिकांश जैन, बौद्ध वा शैवसमाज भुक्त हो गए थे। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि वर्तमान कायस्थोंमें अनेक प्राचीन प्राचीन जैन धर्मावलम्बी हैं।

धर्मशर्माभ्युदयके कर्त्ता महाकवि हरिश्चन्द्र जैन कायस्थ थे। उन्होंने अपने वंशपरिचयमें अपनेको" बड़ी भारी महिमा वाले और सारे जगतके अवतंसरूप नोमकोंके वंशमें कायस्थकुल का लिखा है। "नोमकानां वंशः" पाठ अशुद्ध मालूम होता है इसकी जगह "राजुकानां वंशः" पाठ होना चाहिए।

हरिश्चन्द्रने काव्यकी प्रशंसा करते हुए.....लिखा है कि "महाहरिश्चन्द्रस्य गद्य बन्धो नृपायते" इनकी दूसरी कृति 'जीवंधर चम्पू" है। जो गद्य पद्यमें लिखा हुआ सुन्दर काव्य ग्रन्थ है।

यशोधरचरित अथवा 'दयासुन्दर विधान काव्य' नामक ग्रन्थके कर्ता कवि पद्मनाभ कायस्थ भी जैनधर्मके प्रतिपालक थे। इन्होंने ग्वालियरके तंवरवंशी राजा वीरम-देवके राज्यकालमें (सन् १४०५ से १४२५ के मध्यवर्ती समयमें) भट्टारक - गुणकीर्तिके उपदेशसे वीरमदेवके मन्त्री कुशराज जैसवालके अनुरोधसे "यशोधरचरित्रकी" रचना की थी।

विजयनाथ माथुर चोडे (तक्षकपुर के निवासी थे। उन्होंने जयपुरके दीवान श्री जयचन्दजीके सुपुत्र कृपाराम और श्री ज्ञानजीकी इच्छानुसार सं० १८६१ में भ० सकलकीर्तिके "वर्द्धमानपुराण" का हिन्दीमें पद्यानुवाद किया था।

क्रमशः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीरसेवामन्दिरके सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

(१) पुरातन-जैनवाक्य-सूची—प्राकृतके प्राचीन ६४ मूल-ग्रन्थोंकी पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थोंमें उद्धृत दूसरे पद्योंकी भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्योंकी सूची। संयोजक और सम्पादक मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजी की गवेषणापूर्ण महत्वकी १७० पृष्ठकी प्रस्तावनासे अलंकृत, डा० कालीदास नाग एम. ए., डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्याय एम. ए. डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से भूषित है, शोध-खोजके विद्वानों के लिये अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द (जिसकी प्रस्तावनादिका मूल्य अलगसे पाँच रुपये है) १५)

(२) आप्त-परीक्षा—श्रीविद्यानन्दाचार्यकी स्वोपज्ञ सटीक अपूर्वकृति, आप्तोंकी परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयके सुन्दर सरस और सजीव विवेचनको लिए हुए, न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद तथा प्रस्तावनादिसे युक्त, सजिल्द। ८)

(३) न्यायदीपिका—न्याय-विद्याकी सुन्दर पोथी, न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजीके संस्कृतटिप्पण, हिन्दी अनुवाद, विस्तृत प्रस्तावना और अनेक उपयोगी परिशिष्टोंसे अलंकृत, सजिल्द।

(४) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारतीका अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजीके विशिष्ट हिन्दी अनुवाद छन्दपरिचय, समन्तभद्र-परिचय और भक्तियोग, ज्ञानयोग तथा कर्मयोगका विश्लेषण करती हुई महत्वकी गवेषणापूर्ण प्रस्तावनासे सुशोभित।

(५) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्रकी अनोखी कृति, पापोंके जीतनेकी कला, सटीक, सानुवाद और श्रीजुगलकिशोर मुख्तारकी महत्वकी प्रस्तावनासे अलंकृत सुन्दर जिल्द-सहित।

(६) अध्यात्मकमलमार्तण्ड—पंचाध्यायीकार कवि राजमल्लकी सुन्दर आध्यात्मिक रचना, हिन्दीअनुवाद-सहित और मुख्तार श्रीजुगलकिशोरकी खोजपूर्ण विस्तृत प्रस्तावनासे भूषित। ... ... १॥)

(७) युक्त्यनुशासन—तत्त्वज्ञानसे परिपूर्ण समन्तभद्रकी असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था। मुख्तारश्रीके विशिष्ट हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादिसे अलंकृत, सजिल्द। ... १।)

(८) श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्दरचित, महत्वकी स्तुति, हिन्दी अनुवादादि सहित। ... ।॥)

(९) शासनचतुस्त्रिंशिका—(तीर्थपरिचय)—मुनि मदनकीर्तिकी १३ वीं शताब्दीकी सुन्दर रचना, हिन्दी अनुवादादि-सहित। ... ... ॥)

(१०) सत्साधु-स्मरण-मंगलपाठ—श्रीवीर वर्द्धमान और उनके बाद के २१ महान् आचार्यों के १३७ पुण्य-स्मरणोंका महत्वपूर्ण संग्रह, मुख्तारश्रीके हिन्दी अनुवादादि-सहित। ... ... ॥)

(११) विवाह-समुद्देश्य - मुख्तारश्रीका लिखा हुआ विवाहका सप्रमाण मार्मिक और तात्त्विक विवेचन ... ॥)

(१२) अनेकान्त-रस-लहरी—अनेकान्त जैसे गूढ़ गम्भीर विषयको अतीव सरलतासे समझने-समझानेकी कुंजी, मुख्तार श्रीजुगलकिशोर-लिखित। ... ... ।)

(१३) अनित्यभावना—आ० पद्मनन्दी की महत्वकी रचना, मुख्तारश्रीके हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित ।)

(१४) तत्त्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्रीय)—मुख्तारश्रीके हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्यासे युक्त। ... ।)

(१५) श्रवणबेल्गोल और दक्षिणके अन्य जैनतीर्थ क्षेत्र—ला० राजकृष्ण जैनकी सुन्दर रचना भारतीय पुरातत्व विभागके डिप्टी डायरेक्टर जनरल डा० टी० एन० रामचन्द्रनकी महत्व पूर्ण प्रस्तावनासे अलंकृत १)

नोट—ये सब ग्रन्थ एकसाथ लेनेवालोंको ३८॥) की जगह ३१) में मिलेंगे।

व्यवस्थापक 'वीरसेवामन्दिर-ग्रन्थमाला'
वीरसेवामन्दिर, १, दरियागंज, देहली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. D. 211

अनेकान्तके संरक्षक और सहायक

संरक्षक

१५००) बा० नन्दलालजी सरावगी, कलकत्ता
२५१) बा० छोटेलालजी जैन सरावगी ,,
२५१) बा० सोहनलालजी जैन लमेचू ,,
२५१) ला० गुलजारीमल ऋषभदासजी ,,
२५१) बा० ऋषभचन्द (B.R.C. जैन ,,
२५१) बा० दीनानाथजी सरावगी ,,
२५१) बा० रतनलालजी झांझरी ,,
२५१) बा० बल्देवदासजी जैन सरावगी ,,
२५१) सेठ गजराजजी गंगवाल ,,
२५१) सेठ सुआलालजी जैन ,,
२५१) बा० मिश्रीलाल धर्मचन्दजी ,,
२५१) सेठ मांगीलालजी ,,
२५१) सेठ शान्तिप्रसादजी जैन ,,
२५१) बा० बिशनदयाल रामजीवनजी, पुरलिया
२५१) ला० कपूरचन्द धूपचन्दजी जैन, कानपुर
२५१) बा० जिनेन्द्रकिशोरजी जैन जौहरी, देहली
२५१) ला० राजकृष्ण प्रेमचन्दजी जैन, देहली
२५१) बा० मनोहरलाल नन्हेंमलजी, देहली
२५१) ला० त्रिलोकचन्दजी सहारनपुर
२५१) सेठ छदामीलालजी जैन फीरोजाबाद
२५१) ला० रघुवीरसिंहजी, जैनावाच कम्पनी देहली
२५१) रायबहादुर सेठ हरखचन्दजी जैन रांची
२५१) सेठ बधीचन्दजी गंगवाल जयपुर

सहायक

१०१) बा० राजेन्द्रकुमारजी जैन, न्यू देहली
१०१) ला० परसादीलाल भगवानदासजी पाटनी देहली
१०१) बा० लालचन्दजी बी० सेठी, उज्जैन
१०१) बा० घनश्यामदास बनारसीदासजी, कलकत्ता
१०१) बा० लालचन्दजी जैन सरावगी ,,
१०१) बा० मोतीलाल मक्खनलालजी, कलकत्ता
१०१) बा० केदारनाथ बद्रीप्रसादजी सरावगी,,
१०१) बा० काशीनाथजी, ... ,,
१०१) बा० गोपीचन्द रूपचन्दजी ,,
१०१) बा० धनंजयकुमारजी ,,
१०१) बा० जीतमलजी जैन ,,
१०१) बा० चिरंजीलालजी सरावगी ,,
१०१) बा० रतनलाल चांदमलजी जैन, राँची
१०१) ला० महावीरप्रसादजी ठेकेदार, देहली
१०१) ला० रतनलालजी मादीपुरिया, देहली
१०१) श्री फतेहपुर स्थित जैन समाज, कलकत्ता
१०१) गुप्तसहायक सदर बाजार मेरठ
१०१) श्रीमती श्रीमालादेवी धर्मपत्नी डा० श्रीचन्द्रजी जैन 'संगल' एटा
१०१) ला० मक्खनलालजी मोतीलालजी ठेकेदार, देहली
१०१) बा० फूलचन्द रतनलालजी जैन कलकत्ता
१०१) बा० सुरेन्द्रनाथ नरेन्द्रनाथजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० वंशीधर जुगलकिशोरजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० बद्रीदासजी आत्मारामजी सरावगी, मालफगज पटना सिटी
१०१) ला० उदयराम जिनेश्वरदासजी सहारनपुर
१०१) बा० महावीरप्रसादजी एडवोकेट हिसार
१०१) ला० बलवन्तसिंहजी हांसी
१०१) कुँवर यशवन्तसिंहजी हांसी

अधिष्ठाता 'वीर-सेवामन्दिर'
सरसावा, जि० सहारनपुर

प्रकाशक—परमानन्दजी जैन शास्त्री १, दरियागंज देहली। मुद्रक—रूप-वाणी प्रिंटिंग हाऊस २३, दरियागंज, देहली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org